

# जिनभाषित

दिसम्बर 2001



श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी (टीकमगढ़) म.प्र.

- दो समाधियाँ
- आर्यिका माता पूज्य, मुनि परमपूज्य

वीर निर्वाण सं. 2529

मार्गशीर्ष वि.सं. 2058



## जिज्ञासा

दिसम्बर 2001

वर्ष 1

मासिक

अङ्क 7

## सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन



## कार्यालय

137, आराधना नगर,  
भोपाल-462003 म.प्र.  
फोन 0755-776666



## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाडिया  
पं. रतनलाल बैनाडा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'



## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी  
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश राणा, जयपुर



## द्रव्य-औदार्य

श्री अशोक पाटनी  
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)  
किशनगढ़ (राज.)



## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-351428, 352278



## सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.  
परम संरक्षक 51,000 रु.  
संरक्षक 5,000 रु.  
आजीवन 500 रु.  
वार्षिक 100 रु.  
एक प्रति 10 रु.  
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ विशेष समाचार : दो समाधियाँ 1
- ◆ आपके पत्र : धन्यवाद 2
- ◆ सम्पादकीय : आर्यिका माता पूज्य, मुनि परमपूज्य 5
- ◆ प्रवचन : अपने आदर्शों के पीछे चलो : आचार्य श्री विद्यासागर 12
- ◆ लेख
  - नई सहस्राब्दी और भारत : डॉ. अशोक सहजानन्द 13
  - जैन श्रमण परम्परा के  
अद्वितीय श्रमण : मुनि श्री अजितसागर 14
  - समाधिमरण : जीवन सुधार  
की कुंजी : पं. मिलापचन्द्र कटारिया 16
  - डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया  
की अन्तर्यात्रा : डॉ. शीतलचन्द्र जैन 18
  - जैन संस्कृति में पर्यावरण-चेतना : डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव 21
  - वर्तमान सामाजिक असमन्वय  
के कारण : डॉ. सुरेन्द्र 'भारती' 24
- ◆ शंका समाधान : पं. रतनलाल बैनाडा 28
- ◆ व्यंग्य : कार-कथा : शिखरचन्द्र जैन 30
- ◆ स्तुति : कविवर दौलतराम जी 32
- ◆ कविताएँ
  - कोई एक किसी दूरी को : अशोक शर्मा 11
  - यहाँ कुछ नहीं है अपनी इच्छा से : कुमार अनेकान्त जैन 23
  - जब धर्म का झण्डा डंडा बन  
जाता है : आचार्य श्री विद्यासागर आवरण 3
  - मुखौटे : प्रो. (डॉ.) सरोजकुमार आवरण 3
- ◆ बोधकथा : धर्मराज का वात्सल्यभाव 17
- ◆ समाचार 15,17,27,29

# दो समाधियाँ

## पूज्य आर्यिका श्री जिनमति जी का समाधिमरण

परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी की शिष्या पूजनीया आर्यिका जिनमति जी का 29 नवम्बर 2001 गुरुवार को रात्रि 2.45 बजे खिमलाशा (सागर म.प्र.) में शान्तिमय समाधिमरण हो गया। आपका जन्म 8 अक्टूबर 1963 को शाहगढ़ (सागर, म.प्र.) में हुआ था। आपके गृहस्थ जीवन के पिता श्री कोमलचन्द्र जी जैन एवं माता श्रीमती चिन्तादेवी थी। आपने लौकिक शिक्षा बी.ए. द्वितीय वर्ष तक प्राप्त की थी। आपने 30 नवम्बर 1982 को सिद्धक्षेत्र नैनागिरी में दीपावली के दिन आचार्य श्री विद्यासागर जी से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लेकर मोक्षमार्ग पर कदम रखा था। श्रावकव्रतों की उत्तरोत्तर साधना करते हुए आपने 10 फरवरी 1987 को सिद्धक्षेत्र नैनागिरी में पंचकल्याणक के अवसर पर दीक्षाकल्याणक के दिन आचार्य श्री विद्यासागर जी से आर्यिकादीक्षा ग्रहण की थी। सतत स्वाध्यायशीलप्रवृत्ति की धनी माता जी का कर्मसिद्धान्त पर अच्छा अधिकार था। प्रवचनशैली भी बहत ही प्रभावक थी। वे मृदुभाषी और शान्तपरिणामी थीं। लेकिन असातावेदनीय के उदय से उन्हें एक



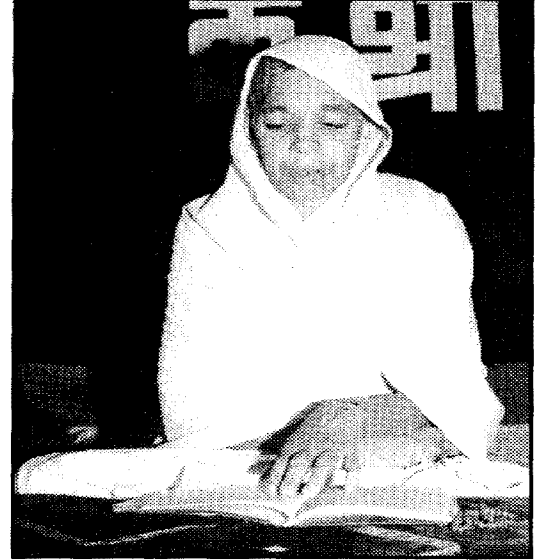
असाध्य मस्तिष्क रोग ने घेर लिया था। फिर भी उन्होंने अपनी चर्या में कोई कमी नहीं आने दी और अंतिम समय तक जाग्रत रहते हुए विशुद्ध परिणामपूर्वक देह का परित्याग किया।

## आर्यिका श्री एकत्वमति जी का समाधिमरण

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी की शिष्या पूज्या आर्यिका श्री एकत्वमति जी ने दिनांक 11 दिसम्बर 2001 को शाम 5.45 बजे श्री दिगम्बर जैन मंदिर टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.) में सल्लेखनापूर्वक देह विसर्जन कर दिया। संघप्रमुखा आर्यिका श्री

पूर्णमति जी तथा संघ की समस्त आर्यिकाओं एवं ब्रह्मचारिणियों ने बड़े ही वात्सल्यभाव से उनकी समुचित वैयावृत्य की। मृत्यु के समय माता जी के परिणाम अत्यन्त शान्त और वैराग्यभाव से परिपूर्ण थे।

उनका जन्म 15 जनवरी 1952 को रायसेन (म.प्र.) जिले के नईगड़िया ग्राम में हुआ था। उनके पूर्वश्रम के पिता श्री कन्हेदीलाल जी जैन तथा माता श्री तेजाबाई थीं। आर्यिकाश्री ने 25 जनवरी 1993



को नन्दीश्वरद्वीप, मढ़ियाजी, जबलपुर के पंचकल्याणक महोत्सव में परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी से आर्यिका-दीक्षा ग्रहण की थी। तब से वे स्वाध्याय एवं संयम-तप की गहन साधना में रत थीं। करीब चार वर्षों से उनके शरीर को असाध्य रोग ने घेर लिया था। फलस्वरूप उन्होंने आचार्यश्री से अनेक बार सल्लेखनाव्रत की प्रार्थना की, किन्तु वे कुछ और प्रतीक्षा करने के लिये कह देते थे। अन्त में 30 अक्टूबर 2001 को उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसी दिन से आर्यिका एकत्वमति जी ने सल्लेखनाव्रत ग्रहण कर लिया और 11 दिसम्बर 2001 को प्रतिक्रमण करते हुए तथा आचार्यश्री के चित्र को एकटक निहारते हुए ओंकारध्वनि के उच्चारण के साथ देहपरित्याग कर दिया।

12 दिसम्बर 2001 को प्रातः 8 बजे विमान में पद्मासनमुद्रा में पिच्छी-कमण्डलु के साथ विराजमान कर उनकी समाधियात्रा निकाली गई। हजारों जैन-जैनेतर लोग यात्रा में शामिल हुए। बाहर से भी बहुत से लोग आ गये थे। भोपाल की आँखों ने प्रसन्नतापूर्वक देह से मोहत्याग का ऐसा हृदयस्पर्शी, अलौकिक, दुर्लभ दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। जैनेतर जनता पर इस दृश्य का अनिर्वचनीय प्रभाव पड़ा। वह गदगद होकर श्रद्धा से मस्तक झुका रही थी।

प्रातः 10.30 पर श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जवाहर चौक, टी.टी. नगर के परिसर में उपयुक्त स्थान पर आर्यिकाश्री द्वारा परित्यक्त शरीर का दाहसंस्कार कर दिया गया। पूज्य आर्यिकाश्री पूर्णमति जी ने उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित किया।

# आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

सर्वप्रथम मैं आपको इस बात के लिये बधाई देना चाहता हूँ कि आपके द्वारा सम्पादित 'जिनभाषित' (मासिक) का स्तर उच्चतम कोटि का है। जैन समाज द्वारा जो पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं, उनमें से अधिकांश अखिल भारतीय स्तर की नहीं हैं। 'जिनभाषित' एक अखिल भारतीय स्तर की पत्रिका है, इस पर जैन समाज को गर्व होना चाहिये।

इस पत्र का मूल उद्देश्य आपके द्वारा सितम्बर, 2001 के अंक में लिखे गये सम्पादकीय के लिये साधुवाद देने का है। आपने अपने सम्पादकीय (वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण) में जो मुद्दे उठाये हैं वे जैन समाज के लिये गम्भीर चिन्तन के विषय हैं। भक्तिमार्गियों के प्रभाव में आकर हम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र्य को शनैः शनैः भूलते जा रहे हैं। 'धर्म की प्रभावना' के नाम पर भौंडे व खर्चोले आयोजनों की आज भरमार है। छात्रावास एवं विद्यालय खोलने जैसे उपयोगी एवं स्थायी प्रभावना वाले विषयों की ओर हमारा ध्यान शायद ही जा पाता है।

मैं आशा करता हूँ कि आप इसी प्रकार के सामयिक एवं विचारोत्तेजक विषयों पर अपनी लेखनी चलाते रहेंगे - बावजूद इसके कि कुछ लोग आपकी आलोचना करने के लिये तत्पर रहेंगे।

**कन्हैयालाल जैन**  
(सेवानिवृत्त आई. ए. एस.)  
ई-4/39, महावीर नगर, भोपाल (म.प्र.)

सितम्बर, 2001 का अंक मिला, पढ़कर बहुत अच्छा लगा। सम्पादकीय "वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण" वर्तमान समय में फैलती एक बड़ी कुरीति पर करारा तमाचा है। मैं काफी समय से धर्मकार्यों में फिल्मी धुन व फिल्मी संगीत के बढ़ते प्रयोग से चिंतित था। हमारा जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है, उसमें इस फूहड़ता का हम सभी को कठोर विरोध करना चाहिये। जहाँ कहीं भी विधान, पंचकल्याणक या अन्य धार्मिक कार्यक्रम हों, उनमें आनेवाली संगीत पार्टियों को स्पष्ट निर्देश दिये जायें कि फिल्मी धुनों का प्रयोग न करें। जिन आचार्य, मुनि या आर्यिका जी के सान्निध्य में ये कार्यक्रम हों, वे इसका निषेध करें, तो इस समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है। 'जिनभाषित' आने वाले समय में श्रेष्ठ पत्रिका बनेगी। एक सुझाव है कि जैन धर्म पर आधारित शब्द-सागर वर्ग पहले ही शुरू करें। आशा है मेरी बात को आप स्थान देंगे।

**भूपेन्द्र जैन**  
तुलसी नगर, भोपाल (म.प्र.)

'जिनभाषित' पत्रिका के सितम्बर-अक्टूबर के अंक प्राप्त हुये। सम्पादकीय लेख 'वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण' एवं 'विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान' पढ़ने पर ऐसा लगा कि आपने वर्तमान

में प्रचलित पाश्चात्यीकरण की ओर समाज के झुकाव पर तीखा प्रहार किया है, वह स्तुत्य है। मंदिरों में फिल्मी संगीत के प्रवेश तथा विवाहों के धार्मिक स्वरूप को छोड़कर उसके वीभत्सीकरण का जो चित्रण किया है वह निश्चित ही झकझोरने वाला है। समाज को संस्कृति की सुरक्षा के लिये ऐसे बेहूदे कार्यक्रमों का बहिष्कार करने की आदत डालनी होगी। आपके ऐसे लेखों के लिये हार्दिक बधाई।

आवरण-पृष्ठ पर आचार्य भगवन्तों के चित्र के साथ जन्मतिथि व पुण्यतिथि का उल्लेख भी किया जाये, तो श्रेयस्कर होगा।

**माणिकचन्द जैन पाटनी**

**राष्ट्रीय महामंत्री दि. जैन महासमिति**

ए/16, नेमीनगर (जैन कालोनी)  
इंदौर-452009 (म.प्र.)

'जिनभाषित' के मई 2001 से सितम्बर 2001 तक के सभी अंक अनवरत अधिगत हो रहे हैं। सर्वप्रथम, आपने पत्रिका का नाम 'जिनभाषित' युक्तियुक्त, समीचीन और अभिनव रखा है। अब तक के ये चारों अंक मुद्रण, गैटप, कागज, विषय-वस्तु सभी दृष्टि से सामयिक और सुन्दर/ आकर्षक बने हैं। ऐसे अतिशोभन प्रकाशन पर आप सभी साधुवाद के पात्र हैं। सभी अंकों के सम्पादकीय समीचीन और अपरिहार्य रूप से पठनीय हैं। सितम्बर अंक का सम्पादकीय तो जैन समाज में आ रही विसंगतियों की ओर समाज को जागृति, देता है। इसी अंक में 'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार गृहीत लेख प्रतिष्ठाचार्यों के लिये विचारणीय है। प्रत्येक अंक में आपका 'जिज्ञासा-समाधान' 'जिनभाषित' के अनुकूल है। आर्यिका नवधाभक्ति विवादविषयक न होकर चर्चापरक ही बना रहे - पं. मूलचंद जी लुहाड़िया का कथन युक्तियुक्त है। सभी अंकों में अन्य आलेख भी पठनीय हैं। प.पू. आचार्य विद्यासागर जी के प्रवचनांशों का प्रकाशन प्रारंभ में ही अपेक्षित है। "जिनभाषित" की अक्षर-कला एवं मुखपृष्ठ पर अध्यात्म-महापुरुष का चित्र पत्रिका को द्विगुणित शोभा प्रदान करते हैं।

पुनः साधुवाद के साथ -

**डॉ. प्रेमचन्द्र रावका**  
22, श्री जी नगर दुर्गापुरा,  
(जयपुर) राज. -302018

'जिनभाषित' का अक्टूबर अंक प्राप्त हुआ। आपके श्रेष्ठ सम्पादकत्व एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ के प्रकाशकत्व में प्रस्तुत यह पत्रिका समाज एवं अन्य प्रकाशनों के लिये उदाहरणस्वरूप है। निम्न विशेषताएँ मन को आकर्षित करने वाली हैं-

1. कुरीतियों एवं समाज तथा धर्म को लज्जित करने वाली प्रवृत्तियों पर गम्भीरता एवं व्यंग्यात्मक पद्धति से प्रहार।
2. आगमविरोधी एवं मुनिविरोधी प्रवृत्तियों से समाज को सावधान करने का प्रयास।
3. सामयिक चर्चाओं का प्रकाशन।

4. आगम विषयक ऊहापोह।
5. जैन संस्कृति का संरक्षण, धर्म प्रभावना।
6. साधु परम्परा विशेष तौर पर सन्त शिरोमणि 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी के दिव्य उपदेशों का प्रसार।

प्रस्तुत अंक में आपका सम्पादकीय 'विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान' तथा 'कर्मों का प्रेरक स्वरूप' दोनों ही दिशाबोधक एवं ज्ञानवर्द्धक हैं। पुराने लेखकों - स्व. पं. नाथूराम प्रेमी, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पूज्य वर्णीजी आदि को आप अवश्य स्थान देते हैं, यह स्पष्टणीय है। "शंका-समाधान" में बैनाड़ाजी जिज्ञासाओं को जाग्रत कर ऊहापोह का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

पत्रिका हर दृष्टि से श्रेष्ठ है। आप सभी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हूँ।

**शिवचरणलाल जैन**  
**सीताराम मार्केट, मैनपुरी (उ.प्र.)**  
**पिन कोड - 205001**

संयोग से 'जिनभाषित' के सितम्बर एवं अक्टूबर दोनों ही अंक एक साथ मिले हैं। पत्रिका दोनों ही सरसरी तौर पर पढ़ गया हूँ। बेहद स्तरीय एवम् सामयिक सामग्रीयुक्त, सुन्दर प्रकाशन, उत्तम सम्पादन के लिये हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें। आवरण पृष्ठ पर आचार्य वीरसागर जी एवं आचार्य शिवसागरजी के चित्र बेहद प्रेरक हैं। हमें पूर्वाचार्यों को ज्यादा प्रसारित/रेखांकित करना चाहिये। "वैराग्य के अवसरों का मनोरंजनीकरण" पर सम्पादकीय अत्यन्त सामयिक एवं प्रभावी है। स्व. मुख्तार जी का भवाभिनन्दी मुनि वाला लेख भी द्रष्टव्य एवं विचारणीय है। एक बार पुनः सुन्दर प्रकाशन हेतु शुभेच्छा।

**डॉ. चिरजीलाल बगड़ा**  
**सम्पादक - दिशाबोध**  
**48, स्टैण्ड रोड, (3rd फ्लोर) कोलकाता - 700007**

आपके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'जिनभाषित' के तीन अंक जुलाई-अगस्त, सितम्बर एवं अक्टूबर प्राप्त हुये। तीनों अंकों पर आचार्य श्री शांतिसागरजी, आ. वीरसागर जी, आ. शिवसागरजी के चित्र प्रकाशित किये गये हैं, जो बहुत ही सुन्दर एवं चित्त को आकर्षित करते हैं। पहले अंक में तो आ. शांतिसागर जी का जीवन-चरित्र दिया है। बहुत ही अच्छा होता यदि अन्य अंकों में भी आ. वीरसागरजी व आ. शिवसागरजी के जीवन-चरित्र का परिचय प्रकाशित किया जाता। महान् गुरुओं के जीवन-चरित्र से पाठकों को प्रेरणा मिलती है।

'जिनभाषित' के अंकों में उत्तम लेख दिये गये हैं, जो आपकी विद्वत्ता का परिचय देते हैं। पत्रिका अनुपम, सुन्दर एवं आकर्षक है। पत्रिका द्वारा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार होता रहेगा। आपको बहुत-बहुत बधाई।

**पुरुषोत्तम दास जैन**  
**1088, डागान स्ट्रीट**  
**पो. - जगाधरी (हरियाणा) 135003**

आपके सफल, उत्कृष्ट सम्पादन से ओतप्रोत पत्रिका 'जिनभाषित' बराबर मिल रही है। पत्रिका अन्तर्बन्ध दोनों ओर से सर्वांग सुन्दर है। गत अंक में "भवाभिनन्दी और मुनिनिन्दा" लेख

मेरे लिये उपयुक्त लगा, 'धर्ममंगल' में पुनः प्रकाशन की अनुमति दें। आपके सम्पादकीय भी अध्यात्म, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान का बेजोड़ संयोग होते हैं। पं. श्री रतनलालजी बैनाड़ा के लेख भी बहुत पसंद आते हैं।

**सौ. लीलावती जैन**  
**धर्ममंगल, 5 दिशांत अपार्टमेंट**  
**दिया. हा. सोसा. संघवीनगर,**  
**औध, पुणे-7**

'जिनभाषित' के सितम्बर व अक्टूबर के अंक मिले, जिन्हें देखकर प्रसन्नता हुई। पं. रतनलालजी बैनाड़ा द्वारा "शंका-समाधान" पढ़कर आनन्द की अनुभूति हुई। आज तक इस पत्रिका के जितने भी अंक आये हैं हमने उनकी पूरी फाईल बनाई है, जिसे हम जब चाहें, तब देख सकते हैं। अभी तक ऐसी सुन्दर पत्रिका देखने को नहीं मिली, शाम को स्वाध्याय के समय पढ़ने का आनन्द आता है।

यह पत्रिका अच्छी निकल रही है। स्वच्छ मुद्रण, आकर्षक साज-सज्जा एवं सुरुचिपूर्ण सामग्री - इन तीनों ही दृष्टियों से यह पत्रिका स्तरीय है।

**सुरेश भाई एम. गाँधी**  
**गाँधी मेडीकल स्टोर्स**  
**डॉ. गाँधी रोड, हिम्मतनगर (गुज.)**

'जिनभाषित' पत्रिका एक उच्च कोटि की पत्रिका है। इसके सभी लेख किसी न किसी विषय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। इस माह का सम्पादकीय लेख "विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान" पठनीय और अनुकरणीय है। इस पत्रिका में कुछ दिवंगत विद्वानों के लेख भी रहते हैं, जो पुराने होते हुये भी नूतन जैसे ही लगते हैं और उनके द्वारा अच्छा बोध प्राप्त होता है। सितम्बर के अंक में स्व. क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी आदि 5 स्व. विद्वानों के लेख हैं, जो पठनीय होने के साथ ही शिक्षाप्रद है। पं. रतनलालजी बैनाड़ा का 'शंका-समाधान' का पृष्ठ तो अत्युत्तम है, जो अनेक शंकाओं पर अच्छा समाधान प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में यह पत्रिका अनेक दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी और पठनीय है। इन सब संयोजनों के लिये प्रधान सम्पादक का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। ऐसी उत्तमकोटि की पत्रिका के प्रकाशन के लिये सबको हार्दिक बधाई।

**उदयचन्द्र जैन, सर्वदर्शनाचार्य**  
**वाराणसी**

'जिनभाषित' का अक्टूबर, 2001 का अंक यथा समय प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम, सम्पादकीय ही पढ़ता हूँ, "विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान" में जिन-शास्त्रसम्मत अवधारणाओं से विवाह के धार्मिक अनुष्ठान एवं विवाह-विधि की धार्मिकता एवं सात्त्विकता प्रतिपादित की गयी है। लेख तैयारी के श्रम, शोध, पुरुषार्थ निश्चित ही प्रशंसनीय हैं। वर्तमान में पश्चिम के अंधानुकरण की दौड़ ने युवा पीढ़ी को भ्रमित कर रखा है, इस पावन संस्कार में जो कलुषता एवं वीभत्सता आ गई है, इसे देख-विचार कर हम अभी सचेत और सतर्क नहीं हुए, तो हमें अपने आपको जैन कहलाकर गौरवान्वित होने का कोई अधिकार नहीं बनता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन दुष्प्रवृत्तियों एवं

प्रदर्शनों को जड़-मूल से नष्ट किया जाये। इस बाबत किये जाने वाले प्रयास प्रशंसनीय हैं ही, संस्कृति के संरक्षण का कार्य भी कर रहे हैं। काव्य समीक्षा के अन्तर्गत “संवेदनाएँ एवं संस्मरण” में अभिव्यक्त हृदय के विचारों को लिपिबद्ध देखकर आत्मिक आनन्द से भर गया। पूज्य श्री क्षमासागर जी महाराज के व्यक्तित्व के प्रति आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास को शब्द मिल गये। हम श्री शुक्लजी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

‘शंका-समाधान’ बहुत ही उत्कृष्ट कॉलम है। पं. रतनलाल जी बैनाड़ा द्वारा पाठकों के प्रश्नों का सम्पक् समाधान प्राप्त होता है।

अरविन्द फुसकेले

उपा. - पारस जन कल्याण संस्थान  
EWS-541, कोटरा, भोपाल - 462003

‘जिनभाषित’ का अक्टूबर, 2001 अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ पर 108 आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के दादागुरु 108 आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का चित्र देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पत्रिका की साज-सज्जा, छपाई अत्यधिक मनमोहक है।

सम्पादकीय - ‘विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान’ पढ़कर ऐसा लगा जैसे आपने मेरे मन की बात कह दी। संपादकीय में आपने सभी सामाजिक पक्षों पर प्रकाश डालकर भटकते हुये समाज को अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से भँली प्रकार मार्गदर्शन दिया है। आपका लेख विवाह के सभी पक्षों को उजागर करने वाला है। मेरी ओर से

बधाई स्वीकार करें। इसी प्रकार एक अन्य लेख ‘वनवासी और चैत्यवासी’- स्व. पं. नाथूरामजी प्रेमी का ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण है। श्वेताम्बर, दिगम्बर साधुसमाज का स्पष्ट चित्रण करने वाले उपयोगी लेख अवश्य आने चाहिये, जिससे निर्ग्रथ साधुओं का असली रूप समझ में आ सके। इसकी अन्य दो किश्तें आने पर पूरी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

अनूपचन्द न्यायतीर्थ

769, गोदिकों का रास्ता  
किशनपोल बाजार, जयपुर (राज.)

‘जिनभाषित’ का अक्टूबर, 2001 अंक मिला। सम्पादकीय ‘विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान’ पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ, इस लेख में समाज में फैली हुई कुरीतियों का अच्छा चित्रण किया गया है। इस पत्रिका का प्रत्येक अंक अपने आप में अनूठा, आकर्षक और आध्यात्मिक सामग्री से भरा होता है, जिसे खोलने के बाद मैं अन्तिम पृष्ठ तक पढ़ने के बाद ही इसे बन्द करता हूँ। यह पत्रिका धर्म में आई कुरीतियों को दूर करने के साथ-साथ सामाजिक अन्धविश्वासों को भी समाप्त करेगी, यह मेरा विश्वास है।

अशोक जैन

प्रचार मंत्री- श्री शांतिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र  
‘सुदर्शनोदय’ आँवा, जिला - टोंक (राज.)  
पिनकोड - 304802

## स्पष्टीकरण

भाई पंकज शाह ने अक्टूबर अंक में मेरे लेख ‘श्री महावीर उदासीन आश्रम कुण्डलपुर’ की स्थापना के संबंध में स्पष्टीकरण चाहा है। मेरा पुनः निवेदन है (लेखानुसार) कि कुण्डलपुर आश्रम की स्थापना पू. गोकुलचन्द्र जी वर्णी नं. 1910/11 में की थी। उन्होंने थोड़ी जमीन खरीदी और झोपड़ियों में त्यागी वृन्द रह कर स्वयं भोजन बनाते थे। इस आश्रम के भवननिर्माण हेतु वे अर्थसंग्रह को इन्दौर गये थे। सर सेठ हुकमचन्द्रजी ने इस योजना को साकार करने हेतु प्रेरणा की और इन्दौर में ऐसे आश्रम की स्थापना के लिये आग्रह किया। अतः 1914 में इन्दौर आश्रम स्थापित हुआ और कुछ समय उसका संचालन भी किया। ब्र. गोकुलचन्द्र जी से सरसेठ सा. ने प्रश्न किया आपको इन्दौर आने से क्या लाभ मिला। ब्र. जी ने उत्तर दिया मैं एक आश्रम को लेकर प्रायस रत था। अब दो हो गये एक कुण्डलपुर दूसरा इन्दौर।

भवन के लिये भिन्न स्थानों से चन्दा करके ब्र. गोकुलचंद्र जी ने प्रायः बारह हजार की लागत से कुण्डलपुर में आश्रम के भवन का निर्माण पूर्व में झोपड़ियों के स्थान पर कराया (सन् 1915 में)। भवन का उद्घाटन सन् 1918 में हुआ।

इस तरह दि. जैन समाज का महावीर उदासीन आश्रम कुण्डलपुर प्रथम आश्रम है इसकी स्थापना 1910/11 में हुई, फिर भी भवन का निर्माण 1915/18 में हुआ, जबकि इंदौर आश्रम का भवन 1914 को अस्तित्व में आ गया था।

इस स्पष्टीकरण से न तो लेखक की ओर न पत्रिका की विश्वनीयता पर आँच आती है।

संदर्भ- मेरी जीवनगाथा (पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी पेज -288 बाबा गोकुल चन्द जी’ तथा द्वादश वर्षीय विवरण श्री दि. जैन उदासीन आश्रम इन्दौर सन् 1927 (1914 से 1926 तक की रिपोर्ट)

अमरचन्द्र जैन,

श्री दि. जैन महावीर आश्रम,  
कुण्डलपुर, दमोह-470773

# आर्यिका माता पूज्य, मुनि परमपूज्य

एक प्रश्न उठाया गया है कि क्या आर्यिका माताएँ पूज्य हैं? मेरा उत्तर है- अवश्य। 'पूजा' शब्द आदर - सम्मान का वाचक है, इसलिये किसी भी व्यक्ति की सम्मानविधि के लिये 'पूजा' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। यथा-

स्वगृहे पूज्यते मूर्खः स्वग्रामे पूज्यते धनी।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

अर्थात् मूर्ख की पूजा (सम्मान) अपने ही घर में होती है, धनवान् अपने ग्राम में ही पूजा जाता है, राजा की पूजा उसके देश तक ही सीमित होती है, किन्तु विद्वान् सब जगह पूजा जाता है।

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।

नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम्॥

(र.क.श्रावकाचार)

अर्थात् यमपाल नामक चाण्डाल, धनदेव नामक व्यापारी, नीली नामक स्त्री तथा वारिषेण और जयकुमार नाम के राजकुमार अहिंसादि अणुव्रतों के कारण पूजातिशय को प्राप्त हुए।

इस तरह 'पूजा' शब्द का प्रयोग मूर्ख की आव-भगत के लिये भी हो सकता है, धनवान् के सम्मान के लिये भी, राजा के आदर-सत्कार के लिये भी, विद्वान् के अभिनन्दन के लिये भी, दिक्पालों के स्वागत के लिये भी, श्रावक, क्षुल्लक, एलक और आर्यिका के आदर-सम्मान के लिये भी और पंचपरमेष्ठियों की आराधना के लिये भी। इतना ही नहीं, हम अपने सम्बन्धियों, मित्रों और अतिथियों का जो स्वागत-सत्कार करते हैं, वह भी पूजा ही कहलाता है।

## पूजा की विधियाँ

विनय के निम्नलिखित उपचारों से आदर-सम्मान की अभिव्यक्ति होती है, अतः ये पूजा की विधियाँ हैं-

1. जुहार, नमस्कार, वन्दे, नमोऽस्तु, इच्छामि, इन विनयसूचक शब्दों का उच्चारण, गुणस्तवन, जयजयकार करना, आशीर्वचन कहना, कुशल - क्षेम पूछना आदि।

2. हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना, पंचागनमन, अष्टागनमन, चरणस्पर्श, पादप्रक्षालन, पादोदक-मस्तकारोहण, अभ्युत्थान, प्रदक्षिणीकरण, पैर दबाना आदि।

3. तिलक लगाना, माला पहनाना, श्रीफल भेंट करना, आरती, उतारना, गन्धद्रव्य से सुवासित करना, उच्चासन, वस्त्राभूषण आदि प्रदान करना, दुग्धादि सेवन कराना, अभिषेक करना, अर्घ्य या अष्टद्रव्य समर्पित करना आदि।

इन पूजोपचारों का वर्णन आचार्यों ने इस प्रकार किया है-

1. "गन्धपुष्पधूपक्षतादिदानमर्हदाद्युद्दिश्य द्रव्यपूजा। अभ्युत्थान-प्रदक्षिणीकरण - प्रणमनादिका-कायक्रिया च। वाचा गुणस्तवनं च।" (भग.आरा./विज. 47)

2. 'प्रणामेनार्चितः नारदो मुनिः।' (हरिवंश पु. 43/228)
3. 'इच्छाकारादिना सम्यक् सम्पूज्य।' (पद्मपुराण 100/40)
4. 'वन्दनीया नमोऽस्तु-शब्द योग्याः।' (सुत्पाहुड, टीका 12)
5. 'वस्त्रादिभिः पूजयित्वा।' (र.क.श्रा. जयकुमार कथा)
6. 'पूजितः आसनादिप्रदानेन।' (पद्मपुराण 102/3)
7. 'आशीर्भिरम्यर्च्य ततः क्षितीन्द्रम्' (भट्टिकाव्य 1/24)

## सम्मानसामग्री का नाम अर्घ्य

भारतीय संस्कृति में अर्घ्य केवल देवपूजा का द्रव्य नहीं है, अपितु अतिथिसत्कार की लोकप्रचलित सामग्री भी है। वैदिक संस्कृति में इन आठ पदार्थों से अर्घ्य बनाया जाता है : जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, घृत, तण्डुल, जौ और सरसो-

आपः क्षीरं कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतुण्डलम्।

यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः॥

यह देवताओं और सम्मान्य व्यक्तियों दोनों को समर्पित किया जाता है। (आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश)

वस्तुतः स्वागतसत्कार की वस्तु का नाम अर्घ्य है। अतः यह जरूरी नहीं है कि वह आठ या अनेक द्रव्यों से मिलकर बने। कोई एक द्रव्य भी अर्घ्य बन जाता है। कालिदास के 'मेघदूत' में निर्वासित यक्ष जब मेघ के द्वारा अपनी प्रिया को सन्देश भेजना चाहता है तब केवल कुटजपुष्पों के अर्घ्य से ही मेघ की पूजा करता है-

सः प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्यं तस्मै

प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।

मल्लिनाथ यहाँ अर्घ्य की व्याख्या करते हुये कहते हैं- "कल्पितार्घ्यं कल्पितोऽनुष्ठितोर्घः पूजाविधिर्यस्मै तस्मै।" अर्थात् 'अर्घ्य' पूजाविधि या पूजाद्रव्य का नाम है। राजगृही में समवशरण में स्थित भगवान् महावीर की पूजा के लिये मेंढक एक ही पुष्प मुँह में दबाकर ले गया था।

इससे सिद्ध है कि केवल देवपूजा की सामग्री अर्घ्य या अर्घ्य नहीं कहलाती, अपितु किसी के भी सत्कार की सामग्री का नाम अर्घ्य है, चाहे वह एक हो अथवा अनेक द्रव्यों का समूह, जलादि अष्टद्रव्य हों या वस्त्राभूषणादि।

इसलिए यदि आर्यिकादि को अर्घ्य चढ़ाया जाता है या अष्टद्रव्य अर्पित किये जाते हैं, तो इसका आगम से कोई विरोध प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जब पंचकल्याणकादि पूजाओं में विघ्नविनाशनार्थ आहूत किये गये दिक्पालादि को सम्मानित करने के लिये अष्टद्रव्यात्मक अर्घ्य प्रदान किया जाता है, तब आर्यिका, एलक और क्षुल्लक तो उनसे गुणस्थान की अपेक्षा ऊँचे ही हैं। फिर आर्यिकाओं का सम्मान करने के लिये हम उन्हें श्रीफल अर्पित करते ही हैं, बल्कि आजकल तो धर्मसभाओं में महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के द्वारा उनके नाम

पुकार-पुकार श्रीफल अर्पित करवाये जाते हैं। श्रीफल से श्रेष्ठ और कोई पूजाद्रव्य नहीं है। पंचपरमेष्ठियों को तो हम इसे मोक्षफल की कामना से अर्पित करते हैं। अतः जल, चन्दन, आदि अन्य सभी द्रव्य श्रीफल से हीन हैं। जब सर्वश्रेष्ठ पूजाद्रव्य आर्थिका को अर्पित करने में कोई आगमविरोध नहीं होता, तो जलचन्दनादि अर्पित करने में आगम विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। और जब एक ही सर्वश्रेष्ठ द्रव्य अर्पित कर देने से पूजा हो जाती है, तब शेष द्रव्य अर्पित करने या न करने से क्या फर्क पड़ता है? फर्क पड़ता है सिर्फ वन्दना और गुणस्तवन पूर्वक या मोक्षप्राप्ति की कामना करते हुए पूजा द्रव्य समर्पित करने से, क्योंकि यह भक्तिरूप पूजा है और भक्तिपूजा के पात्र केवल पंचपरमेष्ठी हैं।

### सम्मानपूजा और भक्तिपूजा में भेद

सम्मानपूजा और भक्तिपूजा में भेद है। सम्मानपूजा सम्मान की भावना से की जाती है और भक्तिपूजा गुणानुरागजनित आन्तरिक श्रद्धाविशेषरूप भक्ति से। ('भक्तेर्गुणानुरागजनितान्तःश्रद्धाविशेष लक्षणयाः' र.क.श्रा.टीका 4/25)। अतः सम्मानपूजा में पूजाद्रव्य सामान्यरूप से (बिना वन्दनादि किये) ही समर्पित कर दिया जाता है, किन्तु भक्तिपूजा में गुणस्तवन एवं वन्दना (वन्दे, नमोऽस्तु आदि शब्दों) के द्वारा भक्तिभाव प्रकट करते हुए अर्पित किया जाता है, जैसा सोमदेव सूरि के कथन से ज्ञात होता है। वे उपासकाध्ययन (श्लोक 697-698) में कहते हैं-

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्याश्च देवताः।

समं पूजाविधानेषु पश्यन्दूरं ब्रजेदधः॥

ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे।

अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः॥

अर्थ - 'तीनों लोकों के द्रष्टा जिनेन्द्र-देव और व्यन्तरादिक देवताओं को जो पूजाविधानों में समानरूप से देखता है, वह नरक में जाता है। परमागम में शासन की रक्षा के लिये उनकी कल्पना की गई है। अतः सम्यग्दृष्टियों को चाहिए कि पूजा का अंश देकर उनका सम्मान करें।'

इस पर टिप्पणी करते हुए पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं- उक्त कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है। (उसमें) सम्यग्दृष्टियों से कहा गया है कि वे उनको (जिन शासन की रक्षा के लिये कल्पित देवताओं को) यज्ञांश (पूजाद्रव्य) देकर सम्मान करें, नमस्कार या स्तुति आदि के द्वारा नहीं। इसके अधिकारी तो जिनेन्द्र देव ही हैं।' (उपासकाध्ययन, पृष्ठ 58)

इससे यह बात स्पष्ट होती है कि किसी को सर्वाधिक महिमामण्डित करने वाला विनयोपचार अर्घ्य या अष्टद्रव्यों का समर्पण नहीं है, अपितु वन्दना एवं स्तुति करना है। वन्दना का अर्थ है समर्पण भाव अर्थात् किसी की आज्ञा को सर्वोच्च मान्यता देना। मोक्षमार्ग में पंचपरमेष्ठियों की ही आज्ञा को सर्वोच्च मान्यता दी जा सकती है, अतः वे ही वन्दनीय हैं। इस प्रकार वन्दना का भाव समर्पणभाव को द्योतित करता है। इसलिये 'वन्दना' का विनयोपचार सब के साथ नहीं किया जा सकता। समर्पण भाव के ही दूसरे नाम 'भक्ति' और 'शरणागति' हैं, और शरण चार ही हैं - अरहंत, सिद्ध, साधु एवं

केवलप्रणीत धर्म। मोक्षार्थी चारों की ही शरण में जाने की कामना करता है : 'चत्वारिसरणं पव्वज्जामि', अतः 'वन्दना' शब्द पंचपरमेष्ठियों के प्रति विनय का सूचक है।

श्रीफल, पुष्प, चन्दन, अक्षत आदि द्रव्य पंच परमेष्ठियों को भी अर्पित किये जाते हैं, दिक्पाल आदि देवों और लोक के सम्माननीय पुरुषों, अतिथियों एवं सम्बन्धियों को भी। सम्माननीय पुरुषों को तिलक लगाया जाता है, माला पहनायी जाती है, श्रीफल अर्पित किया जाता है, शाल उढ़ाया जाता है, और आरती भी उतारी जाती है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर दिक्पालों, इन्द्रों, नवग्रहों, देवियों आदि का आह्वान कर उनके सत्कारार्थ इस प्रकार अष्टद्रव्य अर्पित किये जाते हैं -

'हे आदित्य आगच्छ, आदित्याय स्वाहा। ओं आदित्याय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे। प्रतिगृह्यतां, प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।' (प्रतिष्ठासारोद्धार पं. आशाधर जी 2/28)

'ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इदं जलं गन्धमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पाञ्जलिं च निर्वपामीति स्वाहा।' (वही 2/82)

यह उनके सत्कार की विधि है जैसा कि पं. आशाधर जी ने कहा है - 'अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात्॥' (वही 3/125)

इसलिये इन द्रव्यों का समर्पण पूजा में वैशिष्ट्य उत्पन्न नहीं करता, अपितु इनके समर्पण के साथ जो वन्दना या सम्मान का भाव होता है उससे वैशिष्ट्य उत्पन्न होता है। नीतिज्ञों ने कहा है -

मनः कृतं कृतं मन्ये न शरीरकृतं कृतम्।

येनैवालिक्रिता कान्ता तेनैवालिक्रिता सुता॥

अर्थात् मन से किया गया कार्य ही वास्तविक कार्य होता है, शरीर से किया गया कार्य नहीं। क्योंकि पुरुष जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन करता है उसी से पुत्री का भी करता है, किन्तु मनोभाव भिन्न-भिन्न होने से आलिंगन का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हो जाता है। एक रतिरूप होता है, दूसरा वात्सल्यरूप। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्य-परोपणं हिंसा' इस सूत्र से भी मनोभाव की भिन्नता से क्रिया के स्वरूप की भिन्नता का मनोविज्ञान ध्वनित होता है।

अतः जब वन्दना के भाव के साथ श्रीफल आदि अर्पित किये जाते हैं तब उनका अर्पण भक्तिपूजा का रूप धारण करता है और जब सम्मानभाव के साथ अर्पित किये जाते हैं, तब सम्मानपूजा का रूप ले लेता है। इसीलिए आचार्य कुन्दकुन्द ने असंयतों के लिये किसी द्रव्य के समर्पण का निषेध नहीं किया, अपितु उनकी वन्दना का निषेध किया है - 'असंजदं न वन्दे' (दंसणपाहुड, 26)। और उन्होंने जो यह कहा है कि संयमी ही वन्दनीय है, शेष सभी सग्रन्थलिंगी 'इच्छाकार' के योग्य हैं (सुत्तपाहुड, 13), इसका भी यही रहस्य है कि केवल 'वन्दना' और 'इच्छाकार' के विनयोपचारों से द्रव्यपूजा के स्वरूप में फर्क पड़ता है। इच्छाकार ('इच्छामि' शब्द बोलने) का अर्थ है 'मुझे शुद्धात्म तत्त्व की उपलब्धि हो' ऐसी भावना करना (सूत्रप्रामृत गाथा 15, पं. पन्नालाल साहित्यचार्य) अथवा 'मैं मोक्षभिलाषी हूँ' यह भाव निबोधित करना' (सागारधर्माभूत 7/49,



पं. पन्नलाल जी साहित्याचार्य)। यह मुनि से नीचे के मोक्षसाधकों के प्रति विनय प्रकट करने का एक तरीका है। यह 'वंदना' और 'नमोऽस्तु' शब्दों में गर्भित भक्तिभाव या समर्पणभाव का सूचक नहीं है। यदि होता तो इस पृथक् शब्द के प्रयोग की आवश्यकता ही क्यों होती? यह शब्द सग्रन्थलिंगियों के प्रति सामान्य सम्मानभाव प्रकट करने के उद्देश्य से निर्धारित किया गया है।

अतः यदि आर्यिकादि की वन्दना-स्तुति न की जाय, न ही उनसे मोक्ष की कामना की जाय, केवल इच्छाकार के द्वारा विनय निवेदित करते हुए उन्हें श्रीफल, अर्घ्य या अष्टद्रव्य समर्पित किये जायें, तो यह दिक्पालादि देवों की पूजा की तरह भक्तिरूप पूजा नहीं होगी, मात्र सम्मान रूप पूजा होगी। इससे आगम का विरोध नहीं होता। इस प्रकार आर्यिका, एलक और क्षुल्लक सम्मानपूजा के पात्र हैं, भक्तिपूजा के नहीं। इसके कारणों पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

### पूजाविधि में पात्रानुसार विशेषता

मनुष्य की सम्माननीयता या पूजनीयता के स्तर के अनुसार उसकी पूजाविधि का स्तर साधारण या असाधारण होता है। पूजाविधि के स्तर की साधारणता-असाधारणता से ही सम्माननीयता का स्तर सूचित होता है। यदि परमसम्माननीय की पूजाविधि का स्तर अल्पसम्माननीय की पूजाविधि के समान हो, तो उसकी परमसम्माननीयता द्योतित नहीं होगी, अपितु वह अल्प सम्माननीय सिद्ध होगा, जिससे उसका सम्मान न होकर अपमान होगा। मनुष्य की सम्माननीयता का स्तर उसके पद और गुण के द्वारा निर्धारित होता है। गुरु और शिष्य, उपास्य और उपासक, स्वामी और सेवक, राजा और राजकर्मचारी के गुण और पद परस्पर उच्च-निम्न होते हैं, अतः उनकी सम्माननीयता का स्तर भी उच्च-निम्न होता है, इसलिये उनके सम्मान की विधियाँ भी उच्च-निम्न होती हैं।

### मुनि और आर्यिकादि के पद उच्च-निम्न

मुनि का पद आर्यिका, एलक और क्षुल्लक के पदों से उच्च होता है और आर्यिकादि के पद मुनिपद से निम्न। आर्यिका उपचारमहाव्रती होती है, मुनि यथार्थ महाव्रती। उपचारमहाव्रत उन बाह्य महाव्रतों को कहते हैं जो भावमहाव्रतों के अभाव में वास्तव में महाव्रत नहीं होते, अपितु जिन्हें सादृश्यवश महाव्रत नाम दिया जाता है। आर्यिका के पंचमगुणस्थान होता है, मुनि के षष्ठादि गुणस्थान। आर्यिका के भावसंयम नहीं होता, मुनि के होता है- "न तासां भावसंयमोऽस्ति, भावासंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः" (धवला, पुस्तक 1, सूत्र 93)। आर्यिका सग्रन्थ (वस्त्रपरिग्रहयुक्त) होती है, मुनि निर्ग्रन्थ (नग्न)। निर्वस्त्र रहने पर स्त्री के लिए लज्जा एवं जुगुप्सा परीषहों का सहन और ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा संभव नहीं है। इसलिए वह वस्त्रधारण करने की इच्छा का परित्याग नहीं कर सकती। इसी कारण आगम में आर्यिका के लिए सवस्त्र लिंग निर्धारित किया गया है। अतः वह वस्त्रेच्छारूप आभ्यन्तर परिग्रह एवं वस्त्रग्रहणरूप बाह्य परिग्रह से युक्त होती है, किन्तु मुनि इन दोनों परिग्रहों से मुक्त होता है। श्वेताम्बरमत में सवस्त्रमुक्ति मानी गई है, इसलिए वे साधु-साध्वियों द्वारा धारण किये गये वस्त्रों को परिग्रह

न मानकर संयम का उपकरण (साधन) मानते हैं। इसे दिगम्बरमत अमान्य करता है। आर्यिका मध्यमपात्र है, मुनि उत्तमपात्र- 'यतिः स्यादुत्तमं पात्रं' (सा.ध. 5/44, बारसाणुवेक्खा 17, पद्म. पंचविंश. 2/48)। आर्यिका साक्षात् मोक्षमार्गी नहीं होती, मुनि साक्षात् मोक्षमार्गी होता है। आर्यिका पुरुष को मुनिदीक्षा नहीं दे सकती, इसलिये वह गुरु नहीं है, मुनि दे सकता है इसलिये वह गुरु है। सवस्त्र होने के कारण आर्यिका गृहलिंगी या सागारलिंगी है, मुनि जिनलिंगी या अनगारलिंगी, जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है -

तम्हा दुहितु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिण्।(स.सा.411)  
पाखंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु वा बहुप्पयारेसु। (स.सा. 413)

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे। (स.सा. 414)

इन गाथाओं में आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्षमार्ग में दो ही लिंग (मोक्षमार्ग में दीक्षित मनुष्यों के वेश) बतलाये हैं : सागार और अनगार अथवा मुनिलिंग एवं गृहलिंग।

आचार्य अमृतचन्द्र ने भी 'श्रमण' और 'श्रमणोपासक' के भेद से दो ही लिंगों का कथन किया है - 'यः खलु श्रमण-श्रमणोपासकभेदेन द्विविधं द्रव्यलिङ्गं मोक्षमार्गं इति प्ररूपणप्रकारः।' (स.सा./आ. 414)

जयसेनाचार्य ने इन दो लिंगों का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है- 'निर्विकारशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणभावलिङ्गसहितं निर्ग्रन्थयतिलिङ्गं कौपीनकरणादिबहुभेदसहितं गृहिलिङ्गं चेति द्वयमपि मोक्षमार्गं व्यवहारनयो मन्यते।' (स.सा./ता.वृ. 414)

अर्थात् निर्विकार शुद्धात्मानुभूतिरूप भावालिंग सहित निर्ग्रन्थ (नग्न) लिंग मुनिलिंग है और लँगोटी लगाना आदि अनेक भेदरूप गृहिलिंग है।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में निर्ग्रन्थ (नग्न) लिंग को मुनिलिंग और सग्रन्थ (सवस्त्र) लिंग को गृहिलिंग कहा गया है। इससे यह निर्विवाद है कि क्षुल्लक, एलक और आर्यिका के लिंग गृहिलिंग या सागारलिंग हैं, क्योंकि वे वस्त्रधारी होते हैं।

केवल मुनि का निर्ग्रन्थ लिंग जिनलिंग है। क्षुल्लक, एलक और आर्यिका के लिंग जिनलिंग नहीं है। किन्तु कुछ आधुनिक विद्वानों ने क्षुल्लकादि के सवस्त्रलिंग को भी जिनलिंग मान लिया है (देखिये पुस्तक 'क्या आर्यिका माताएँ पूज्य हैं? पृष्ठ 18-20)। यह सर्वथा आगम-विरुद्ध है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है-

एवकं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्टुसावयाणं तु।  
अवरट्टियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि।।

(दंसणपाहुड, 18)

अर्थात् लिंग तीन ही हैं : एक तो जिनरूप, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों (क्षुल्लक-एलक) का रूप और तीसरा आर्यिकाओं का रूप। इनके अलावा चौथा लिंग नहीं है।

यहाँ रूप और लिंग पर्यायवाची हैं, अतः जिनलिंग का अर्थ जिनेन्द्र भगवान् जैसा नग्न रूप है। टीकाकार श्रुतसूरी ने कहा भी है- "एकमद्वितीयं जिनस्य रूपं नग्नरूपम्।" निम्नलिखित कथन से भी

यही बात सिद्ध होती है-

“अथाभव्या जिनलिङ्गेन कियदूरं गच्छन्तीत्याशंकायामाह-  
जा उवरिमगेवेज्जं उववादे अभवियाण उक्कस्सो।  
उक्कट्टेण तवेण दु णियमा णिगंथल्लिगेण।।”

(मूलाचार, गाथा 1177)

यहाँ जिनलिंग को निर्ग्रन्थलिंग का ही वाचक बतलाया गया है। इस प्रकार क्षुल्लक, एलक और आर्यिका के लिंग जैनलिंग (जिनानुयायियों के लिंग) तो हैं, किन्तु जिनलिंग नहीं। वे गृहलिंग ही हैं। इन भिन्नताओं से सिद्ध है कि मुनि का पद उच्च है और आर्यिकादि का निम्न।

### आर्यिकादि पूज्य, मुनि परमपूज्य

फिर भी क्षुल्लक, एलक और आर्यिका के लिंग मोक्षमार्ग में दीक्षित लोगों के लिंग हैं और प्रथम दो ग्यारह प्रतिमाधारी हैं तथा आर्यिकाएँ उससे भी ऊपर उपचारमहाव्रतधारी हैं। इसलिये वे सामान्य श्रावकों से बहुत उच्च हैं। आर्यिका को तो उपचारमहाव्रतधारी होने से उपचारतः श्रमणी, संयती और विरती भी कहा गया है। इससे यह सूचित किया गया है कि वे मुनितुल्य तो नहीं, पर मुनिकल्प (अंशतः मुनि सदृश) हैं। उपचारमहाव्रत यद्यपि बाह्य महाव्रत हैं तथापि उनकी साधना बहुत कठोर है। एक साड़ी धारण करने के कारण यद्यपि मुनिवत् शीतोष्णदंशमशकादि परीषहों के सहन का कठोर तप आर्यिका को नहीं करना पड़ता तथा स्त्रीशरीर एवं सवस्त्रता के कारण अहिंसा महाव्रत का भी पालन मुनिवत् नहीं होता, तथापि सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य महाव्रतों का पालन मुनितुल्य ही होता है। अतः आर्यिका की श्रमणी संज्ञा द्रव्यसंयम की अपेक्षा सार्थक है।

यद्यपि यह द्रव्यसंयम (उपचार महाव्रत) मोक्ष का साक्षात् मार्ग नहीं है और न स्त्रीशरीर से मोक्ष की साक्षात् साधना के योग्य षष्ठगुणस्थान प्राप्त किया जा सकता है, तथापि स्त्री को बाह्य महाव्रतों की दीक्षा देने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है। वह है उसे स्त्रीशक्ति के अनुसार उच्चतम त्याग और तप की प्रेरणा देना और यह ज्ञापित करना कि स्त्री भी त्याग और तप की बहुत ऊँचाई तक पहुँच सकती है। और यह उच्च त्याग-तप निरर्थक नहीं है। यद्यपि इससे कर्मों का संवर और निर्जरा मुनि के बराबर नहीं होती, तथापि सम्यग्दर्शन सहित होने से ऐसे उत्कृष्ट पुण्य का बन्ध होता है, जिससे वह स्त्रीलिंग का छेदकर सोलहवें स्वर्ग का देव बन जाती है, साथ ही अगले भव में मुनिव्रत धारण करने योग्य पुरुषशरीर एवं उत्तमसंहननादि सामग्री उपलब्ध कर लेती है। इस प्रकार उपचारमहाव्रत परम्परया मोक्षसाधक होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस महत्त्वपूर्ण साधना के कारण आर्यिका लिंग पूज्य है, आदर-सम्मान के योग्य है। इसी प्रकार क्षुल्लक-एलक भी यद्यपि अणुव्रतधारी हैं, तथापि उनकी ग्यारह प्रतिमा-रूप साधना कुछ अंश में मुनिसदृश ही होती है। क्षुल्लक शब्द क्षुद्र अर्थात् ‘छोटा’ अर्थ का वाचक है, जो उसके लघुमुनित्व को द्योतित करने के लिये प्रयुक्त किया गया है। इसलिये पद्मपुराण में क्षुल्लक नारद को गृहस्थमुनि कहा गया है और लवण और अंकुश द्वारा उनकी पूजा किये जाने का वर्णन है-

दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्राप ताभ्यांच पूजितः।

आसनादिप्रदानेन गृहस्थमुनिवेषभृत्॥102/3

यहाँ ‘गृहस्थ’ शब्द क्षुल्लक के सवस्त्र गृहलिंग का सूचक है और ‘मुनि’ शब्द अंशतः मुनिसदृश (मुनितुल्य नहीं) त्याग-तप तथा ब्रह्मचर्यादि व्रतों के पालन का सूचक है। ‘एलक’ शब्द भी ‘अचेलक’ (अल्पचेलक) शब्द का प्राकृतरूप है और इससे भी अंशतः मुनिसदृश चर्या द्योतित होती है। सोमदेवसूरि ने भी इसी दृष्टि से यशस्तिलकचम्पू में अभयमति क्षुल्लिका के लिये ‘मुनिकुमारिका’ (श्लोक 175 का गद्य) शब्द का उपचारतः प्रयोग किया है। इससे क्षुल्लक और एलक की भी पूज्यता प्रकट होती है।

फिर भी क्षुल्लक, एलक और आर्यिका तीनों के लिंग सग्रन्थ होने से गृहलिंग हैं। निर्ग्रन्थलिंग से रहित होने के कारण उनमें गुरु बनने की योग्यता नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जो हिंसा रहित क्रियाओं को ही धर्म, अठारह दोषरहित आत्मा को ही देव तथा निर्ग्रन्थ उपदेष्टा को ही गुरु मानता है वही सम्यग्दृष्टि है -

हिंसारहिण् धम्मो अट्टारहदोसवज्जिण् देवे।

णिगंथे पावयणे सहहणं होइ सम्मत्तं।।

(मोक्षप्राभृत, 90)

इससे स्पष्ट होता है कि सग्रन्थ को गुरु माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। कुन्दकुन्द ने यह भी कहा है कि जिनबिम्बस्वरूप आचार्य, उपाध्याय और साधु ही कर्मक्षय की कारणभूत दीक्षा-शिक्षा देने के अधिकारी हैं, क्योंकि वे संयम से शुद्ध, और वीतराग होते हैं -

जिणबिम्बं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।

जं देइ दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा।

(बोधपाहुड, 16)

आगे वे कहते हैं कि जिसके पास जो होता है, वही तो वह दूसरों को दे सकता है। जो वस्तु मनुष्य के पास नहीं है, वह दूसरों को कैसे दी जा सकती है? जिसके पास धन होता है वह दूसरों को धन दे सकता है, जिसके पास काम (इन्द्रिय सुख की सामग्री) होता है वह काम दे सकता है, जिसके पास धर्म होता है वह धर्म दे सकता है, जिसके पास ज्ञान होता है वह ज्ञान दे सकता है तथा जिसके पास प्रव्रज्या (‘पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता,’ बोधपाहुड, 25) होती है, वह प्रव्रज्या दे सकता है-

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।

सो देइ जस्स अत्थि दु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा।।

(बोधपाहुड, 24)

टीकाकार श्रुतसागर सूरि इसे स्पष्ट करते हुये लिखते हैं- “स ददाति यस्य पुरुषस्य यद् वस्तु वर्तते असत्कथं दातुं समर्थः? यस्याऽर्थो वर्तते सोऽर्थं ददाति, यस्य धर्मो वर्तते स धर्मं ददाति, यस्य प्रव्रज्या दीक्षा वर्तते स केवलज्ञानहेतुभूतां प्रव्रज्यां ददाति।”

इस प्रकार जो क्षुल्लक, एलक और आर्यिका स्वयं निर्ग्रन्थता रूप प्रव्रज्या से युक्त नहीं हैं, वे दूसरों को यह प्रव्रज्या कैसे दो सकते हैं? अतः उनमें गुरु बनने की योग्यता नहीं है। फलस्वरूप मोक्षार्थी के लिये वे उपास्य या शरणभूत नहीं हैं। शिक्षा-प्रव्रज्या से युक्त मुनि

ही होते हैं, अतः उन्हीं से वे मोक्षार्थियों को प्राप्त हो सकती हैं। इसलिये मुनि ही उपास्य या शरणभूत हैं। इस गुण के कारण मुनि का पद आर्यिकादि से बहुत उच्च होता है। अतः आर्यिकादि पूज्य हैं, किन्तु मुनि परमपूज्य हैं।

### पूज्य और परमपूज्य की पूजाविधियों में अन्तर

पूज्य और परमपूज्य की पूजाविधियों में अन्तर होना स्वाभाविक है। उनमें ऐसा अन्तर होना चाहिये जिससे पूज्य की पूज्यता और परमपूज्य की परमपूज्यता द्योतित हो। यदि दोनों की पूजाविधियाँ एक जैसी हुई तो परमपूज्य की परमपूज्यता द्योतित न हो सकेगी, वह सामान्य पूज्य जैसा ही प्रतीत होगा। इससे पूजाविधि उसके सम्मान का माध्यम न बनकर अपमान का माध्यम बन जायेगी। जैसे किसी धर्मसभा में हम मुनि और आर्यिका दोनों को बराबर ऊँचाई के आसन प्रदान करें, तो इससे मुनि के प्रति उसके उच्चपदानुरूप विनय प्रकट न हो सकेगी और यह उसकी अविनय का कारण बन जायेगा। अतः पूजाविधियों में पद के अनुसार विशेषता होनी चाहिये। मूलाचार की 'सदिणिए उणरादिणिए' गाथा (384) में मुनियों के लिये भी अपने से उच्च और निम्नपद वालों के प्रति यथायोग्य (उच्च-निम्नपदानुसार) विनय करने का नियम बतलाया गया है। उसकी व्याख्या करते हुए आचार्य वसुनन्दी कहते हैं-

“विनयो यथार्हो यथायोग्यो कर्तव्यः अप्रमत्तेन प्रमादरहितेन। साधूनां यो योग्यः, आर्यिकाणां यो योग्यः, श्रावकाणां च यो योग्यः, अन्येषामपि च यो योग्यः स तथा कर्तव्यः। केन? साधुवर्गेण।”

निम्नपदवालों के 'नमोऽस्तु' करने पर प्रसन्नमुद्रा में आशीर्वाद देना ही साधु का निम्नपदवालों के प्रति विनय-प्रकाशन है। तात्पर्य यह कि उच्च-निम्न पद के अनुसार पूजाविधि में अन्तर होना पदानुसार सम्मान व्यक्त करने के लिये आवश्यक है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने इस अन्तर पर प्रकाश डालते हुए 'सूत्रपाहुड' (गाथा 11-13) में कहा है कि केवल निर्ग्रन्थमुद्राधारी ही वन्दनीय हैं, शेष सब सचेललिंगी 'इच्छाकार' के योग्य हैं-

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।  
सो होइ वंदणीओ सुरासुरमाणुसे लोए॥  
जे वावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता॥  
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयनिज्जरा साहू॥  
अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता॥  
चेलेण य परिग्गहिआ ते भणिगा इच्छाणिज्जाय॥

सचेललिंगियों में क्षुल्लक, एलक और आर्यिका तीनों आ जाते हैं। अतः इन तीनों को कुन्दकुन्द ने 'इच्छाकार' के योग्य बतलाया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुनि की पूजा 'वन्दे' या 'नमोऽस्तु' शब्द के उच्चारण द्वारा की जानी चाहिये और आर्यिका, एलक एवं क्षुल्लक की 'इच्छामि' शब्द के उच्चारण द्वारा। टीकाकार श्रुतसागरसूरि ने स्पष्ट किया है- “वन्दनीया नमोऽस्तुशब्दयोग्याः”, अर्थात् 'वन्दनीय' का अर्थ है 'नमोऽस्तु' शब्द के योग्य होना। कुन्दकुन्द ने 'दंसण पाहुड' (गाथा 26) में भी कहा है -

असंजदं ण वंदे वच्छविहिणो वि सो ण वंदिज्जा।  
दुण्णिणवि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि॥

इसकी व्याख्या करते हुए श्रुतसागरसूरि कहते हैं-

“असंयतं गृहस्थवेषधारिणं संयमंपालयन्तमपि न वन्देत। वस्त्रविहीनोऽपि नग्नोऽपि संयमरहितो न वन्देत, न नमस्क्रियेत। द्वितयेऽपि समाना संयमरहिता भवन्ति।”

अर्थ- गृहस्थवेशधारी यदि द्रव्यसंयम का भी पालन करता हो, तो भी उसकी वन्दना नहीं करनी चाहिये और जो नग्न होते हुए भी भाव-संयम से रहित है वह भी वन्दनीय नहीं है, क्योंकि दोनों ही समान रूप से संयमरहित हैं।

इस तरह कुन्दकुन्द के अनुसार आर्यिका और द्रव्यलिंगी मुनि दोनों ही अवन्दनीय हैं, अर्थात् 'वन्दे', 'नमोऽस्तु', 'नमामि', 'प्रणमामि' आदि शब्दों के द्वारा पूजने योग्य नहीं है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि कुन्दकुन्द ने केवल निर्ग्रन्थ मुनि को ही वन्दना के योग्य बतलाया है, अन्य सभी सग्रन्थलिंगियों को वन्दना के अयोग्य कहा है। इससे सिद्ध होता है कि 'वन्दे' और 'नमोऽस्तु' शब्द अत्यन्त महिमाशाली हैं, वे परम-पूज्यता के द्योतक हैं। इनका प्रयोग केवल मुनि के लिये ही किया जाना चाहिये, सामान्य पूज्यों के लिये नहीं। सामान्य पूज्यों के लिये 'इच्छामि' शब्द का ही प्रयोग औचित्यपूर्ण है। अर्थात् आर्यिकाओं के लिये भी 'वन्दे' या 'वन्दामि' शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। आजकल उनके लिये 'वन्दामि' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह कहीं-कहीं पुराणों में भी मिलता है- 'धन्या भगवति! त्वं नो वन्द्या जाता' (पद्मपुराण 161/43)। यह आचार्य कुन्दकुन्द के उपर्युक्त कथन के विरुद्ध है। 'वन्दामि' संस्कृत 'वन्दे' का प्राकृत रूप है और 'नमोऽस्तु' का पर्यायवाची है, जैसा कि 'वंदितु सव्वसिद्धे', 'णमो सिद्धाणं', 'वन्दे तद्गुणलब्धये' में दृष्टिगोचर होता है। अतः जो 'वन्दामि' शब्द अरहन्त, सिद्ध और साधु के लिये प्रयोज्य है, वह सग्रन्थ आर्यिका के लिये प्रयोज्य कैसे हो सकता है?

'वन्दे' या 'नमोऽस्तु' शब्द के उच्चारण के साथ पंचपरमेष्ठी के लिये पंचांग या अष्टांग नमन भी किया जाता है। जैसा कि इस कथन से ज्ञात होता है- “तस्य च जिनबिम्बस्य जिनबिम्बमूर्तेराचार्यस्य प्रणामं नमस्कारं पञ्चाङ्गमष्टाङ्गं वा कुरुत” (बोधपाहुड/टीका, 17)। यह भी परमपूज्यता का प्रकाशक है। अतः जो परमपूज्य नहीं है, उसके लिये पंचांगनमन या अष्टांगनमन भी अनुचित है, क्योंकि इससे परमपूज्य की अवमानना होती है। यह उसी प्रकार का कृत्य है, जैसे आचार्य के आसन पर उपाध्याय या साधु को बैठाल दिया जाय या स्वामी की उपाधियाँ सेवकों के साथ जोड़ दी जायँ।

जो 'नमः', 'वन्दे' आदि शब्द परमपूज्य के योग्य हैं, उनका प्रयोग सामान्यपूज्य के लिये किये जाने में एक और दोष है। वह यह कि महाव्रतों के बिना ही नमस्कार किये जाने से वे अधिमानग्रस्त हो सकते हैं और महाव्रतों को धारण करने में प्रमाद कर सकते हैं। अतः अहंकारग्रस्त जीवों की सम्यक्चारित्र्य में प्रवृत्ति कराने के लिये और उस प्रवृत्तिमार्ग में भक्ति प्रकट करने के लिये उन्हें नमस्कार नहीं किया जाना चाहिये। यह बात धवलाटीकाकार ने निम्नलिखित शब्दों में कही है-

“महव्वयविरहिद-दोरयणहराणं ओहिणाणीण-मणोहिणाणीणं च किमट्ठं णमोक्कारो ण कीरदे? गारवगरुवेसु जीवेसु चरणाचारपय दिसम्बर 2001 जिनभाषित 9

द्वावण्डं उत्तिमग्गविसयभत्तिय-पयासण्डं च ण कीरेदे।” (पुस्तक 9, सूत्र 4, पृष्ठ 41)

अर्थ- महाव्रतों से रहित दो रत्नों (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान) के धारक अवधिज्ञानी तथा अवधिज्ञान से रहित जीवों को भी नमस्कार क्यों नहीं किया जाता? अहंकार से बोझिल जीवों में चरणाचार (सम्यग्चारित्र) की प्रवृत्ति कराने के लिये तथा प्रवृत्तिमार्ग-विषयक भक्ति का प्रकाशन करने के लिये उन्हें नमस्कार नहीं किया जाता।

इस प्रकार पचांग या अष्टांगनमनपूर्वक ‘नमोऽस्तु’, ‘वन्दे’, आदि शब्दों के उच्चारण द्वारा केवल परमपूज्यों (पंचपरमेष्ठियों) की ही पूजा का विधान जिनागम में किया गया है। आर्यिका, एलक और क्षुल्लक सग्रन्थ लिंगी हैं, अतः उनकी पूजा (सम्मान) हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर ‘इच्छामि’ शब्द के उच्चारण द्वारा ही की जानी चाहिये। पद्मपुराण में इसके उदाहरण मिलते हैं-

जिनशासनदेवीव सा मनोहरभावना।  
दृष्ट्वा क्षुल्लकमुत्तीर्य सम्भ्रान्ता नवमालिकाम्।  
उपगत्य समाधाय करवारिरुहद्वयम्।  
इच्छाकारदिना सम्यक् सम्पूज्य विधिकोविदा॥

(100/39-40)

यहाँ बतलाया गया है कि सीता ने हाथ जोड़कर ‘इच्छामि’ निवेदन करते हुये क्षुल्लक सिद्धार्थ की पूजा की।

जब सीता आर्यिका हो जाती है, तब लक्ष्मण केवल हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनका अभिनन्दन करते हैं-

नारायणोऽपि सौम्यात्मा प्रणम्य रचिताञ्जलिः।  
अभ्यनन्दयदार्या तां पद्मनाभमनुब्रुवन्॥

पद्म पु.107/42

परमपूज्य और सामान्यपूज्य की पूजाविधियों में यह पहला अन्तर है।

### नवधा भक्ति एवं सप्तधा पूजा

वसुनन्दिश्रावकाचार में मुनि के लिये आहारदान की नौ विधियाँ (नवधाभक्ति) इस प्रकार बतलाई गई हैं : 1. प्रतिग्रहण (पड़गाहना) एवं प्रदक्षिणा करना, 2. उच्चस्थान पर बैठाना, 3. पादप्रक्षालन कर पादोदक को मस्तक पर रखना, 4. अष्टद्रव्य से पूजा करना, 5. प्रणाम करना, 6. मनः शुद्धि, 7. वचनशुद्धि, 8. कायशुद्धि और 9. एषणाशुद्धि (आहारजलशुद्धि) की घोषणा करना।

इनमें प्रदक्षिणा, पादप्रक्षालन, पादोदकमस्तकारोहण और वन्दनादिपूर्वक अष्टद्रव्य-समर्पण, ये सम्मानरूप पूजा की विधियाँ नहीं, भक्तिरूप पूजा की विधियाँ हैं। ये उसी के साथ व्यवहृत हो सकती हैं, जो हमारा उपास्य या आराध्य हो। हमारा उपास्य वही हो सकता है जिसके दर्शन, ध्यान और गुणस्तवन से मन में अन्तर्बाह्य निर्ग्रन्थता का दृश्य उपस्थित हो जाय, क्योंकि वही दृश्य हमारे भीतर निर्ग्रन्थता की जन्मभूमि बन सकता है। इस दृश्य की उपस्थिति निर्ग्रन्थमुनियों और जिनबिम्बों के ही दर्शन, ध्यान एवं गुणस्तवन से संभव है, सग्रन्थों के नहीं। अतः निर्ग्रन्थ मुनि और अरहन्त ही हमारे उपास्य हैं। फलस्वरूप प्रदक्षिणादि के योग्य वही हैं, क्योंकि निर्ग्रन्थ की प्रदक्षिणा करने से ही निर्ग्रन्थ रूप बार-बार दृष्टि में आता है। और

चूँकि अन्तर्बाह्य निर्ग्रन्थ शरीर ही पवित्र होता है अतः उसके ही चरणों को छूकर आया हुआ उदक मस्तक पर धारण करने के योग्य है तथा उसी को अष्टद्रव्य समर्पित करने से निर्ग्रन्थता के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट होती है और हम निर्ग्रन्थता के अनन्य उपासक या श्रमणोपासक का पद प्राप्त करते हैं। फलितार्थ यह कि आर्यिकादि सग्रन्थ होने से उपास्य नहीं हैं, अतः उनकी आहारदान सम्बन्धी पूजाविधि में पादप्रक्षालन एवं वन्दनादिपूर्वक अष्टद्रव्यसमर्पण ये दो उपचार सम्भव नहीं हैं। इसलिये उनकी पूजाविधि सप्तांगी है। वे सात अंग हैं : प्रतिग्रहण (प्रदक्षिणारहित), उच्चासनदान, इच्छाकार तथा चतुर्विध शुद्धि का निवेदन। इस तरह आर्यिका, एलक एवं क्षुल्लक सप्तविध पूजा के पात्र हैं। नवधा भक्ति के पात्र केवल निर्ग्रन्थ मुनि हैं।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा (गाथा 360) में जो यह कहा गया है कि ‘उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को नवदानविधिपूर्वक आहारदान करना चाहिये’, इस कथन में ‘यथायोग्य’ (योग्यतानुसार) अर्थ गम्य है। क्योंकि ऐसा न हो तो संयतासंयत श्रावक (मध्यम पात्र) को असंयत सम्यग्दृष्टि (जघन्यपात्र) का चरणोदक मस्तक पर रखना पड़ेगा, जो विनय की दृष्टि से असंगत है। यह विनय के अर्थ पर ही पानी फेर देनेवाला है। ‘श्रमण संघ संहिता’ के निम्न श्लोक में ‘यथायोग्य’ शब्द का स्पष्टतः प्रयोग किया गया है-

जघन्यमध्यमोत्कृष्टपात्राणां गुणशालिनाम्।

नवधा दीयते दानं यथायोग्यं सुभक्तितः॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भी स्पष्टरूप से कहा गया है कि नवधाभक्ति पूर्वक दान आर्यों (मुनियों) को दिया जाना चाहिए-

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।

अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम्॥

प्रभाचन्द्र ने ‘आर्याणां’ का अर्थ ‘मुनि’ किया है- ‘आर्याणां सदृशनादिगुणोपेतमुनीनाम्।’

किसी भी ग्रन्थ में आर्यिका की नवधाभक्ति का उल्लेख नहीं है और मुनि की नवधाभक्ति के विधान में आर्यिका की नवधाभक्ति का विधान गर्भित मानने का कोई आधार नहीं है। यदि बिना आधार के ही गर्भित मान लिया जाये, तो एलक, क्षुल्लक और असंयत सम्यग्दृष्टि की भी नवधाभक्ति का विधान गर्भित माना जा सकता है। किन्तु इससे पूर्वोक्त दोष का प्रसंग आता है। अतः सिद्ध है कि जिनागम में आर्यिका की नवधाभक्ति मान्य नहीं की गई है।

इस प्रकार आर्यिका माता पूजनीय तो हैं, लेकिन उनकी पूजाविधि मुनि के समकक्ष नहीं है, अपितु उससे कुछ अवरश्रेणी की है। वह उपास्यकोटि की नहीं, बल्कि उत्कृष्ट-उपासक-कोटि की है। आगमानुसार उनके प्रति विनय का प्रदर्शन हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हुये ‘इच्छामि’ शब्द के उच्चारण द्वारा किया जाना चाहिये तथा आहारदान के समय उपर्युक्त सात उपचार ही पूजा में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। हाँ, वन्दना, स्तुति और मोक्षकामना के बिना अर्घ या अष्टद्रव्यों का समर्पण किया जाय, तो किया जा सकता है। ‘परमपूज्य’ विशेषण के प्रयोग में भी सावधानी बरतनी चाहिये। यह केवल परमस्थान में स्थित पंचपरमेष्ठियों के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है।



## आत्मघाती चेष्टा

आचारग्रन्थों में आर्यिका को उपचार (नाम मात्र) से महाव्रती, श्रमणी, संयती और विरती तथा पुराणों में क्षुल्लक को 'गृहस्थमुनि' और 'मुनिकुमार' कहा गया है। इसका अनुसरण करते हुये कुछ आधुनिक विद्वानों ने उन्हें उपचार से गुरु भी कह दिया है। स्याद्वादियों को इसमें असंगति प्रतीत नहीं हो सकती। किन्तु इस उपचार के बहाने उक्त विद्वानों ने उनके लिये परमार्थ महाव्रतियों के तुल्य विनयोपचार और नवधाभक्ति का औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा की है। (देखिये पुस्तक - "क्या आर्यिका माताएँ पूज्य हैं?") यह एक आत्मघाती कदम है। इससे यह तर्क उठता है कि जब सग्रन्थव्रती निर्ग्रन्थव्रती के बराबर ही विनय का पात्र, वन्दनीय या पूजनीय है तो उनके चारित्र्य या संयम में क्या फर्क रहा? उनके संयम भी तुल्य सिद्ध होते हैं, और जब सवस्त्र और निर्वस्त्र के संयम तुल्य हैं, तब जैसे नग्न संयमी साक्षात् मोक्षमार्गी है, वैसे ही सवस्त्र संयमी भी साक्षात् मोक्षमार्गी क्यों नहीं हो सकता? यह तर्क सवस्त्र को भी निर्ग्रन्थ की तरह मोक्ष का पात्र सिद्ध कर देता है, जिससे श्वेताम्बर और यापनीय मतों का अनुमोदन होता है और दिगम्बर मत युक्तिहीनता की स्थिति में पहुँच जाता है। अतः इस चेष्टा का दृढ़ता से निषेध किया जाना चाहिये और यह तथ्य प्रचारित किया जाना चाहिये कि दिगम्बर आम्नाय में सग्रन्थ आर्यिकादि निर्ग्रन्थ मुनि के तुल्य पूजनीय नहीं हैं।

आगम में कहा गया है कि मुनियों के द्वारा 'नमोऽस्तु' किये जाने पर उनसे बड़े मुनि एवं आचार्य भी 'नमोऽस्तु' शब्द बोलकर प्रतिवन्दना करते हैं। यही वन्दना की स्वीकृति है (मूलाचार गाथा 612/भावार्थ-गणिनी ज्ञानमती जी)। किन्तु आर्यिकाओं के वन्दना करने पर मुनि प्रतिवन्दना नहीं करते, अपितु 'समाधि के द्वारा कर्मक्षय हो' यह प्रत्युत्तर देते हैं, ताकि वे अल्पसंयमी के समकक्ष न हो जायँ। जैसा कि श्रुतसागर सूरि ने कहा है-

“सज्जातिज्ञापनार्थं स्त्रीणां महाव्रतान्युपचर्यन्ते, न परमार्थ-स्तासां महाव्रतानि सन्ति, तेन मुनिजनस्य स्त्रियाश्च परस्परं वन्दानापि

न युक्ता। यदि ता वन्दन्ते तदा मुनिभिर्नमोस्त्विति न वक्तव्यम्। किं तर्हि वक्तव्यम्? समाधिकर्मक्षयोस्त्विति। ये तु परस्परं मत्थएण वंदामीति आर्याः प्रतिवदन्ति तेप्यसंयमिनो ज्ञातव्याः। दिगम्बराणां मते या नीतिः सा प्रमाणमिति मन्तव्यम्।” (मोक्षप्राभृत, गाथा 12)

यहाँ श्रुतसागरसूरि ने स्पष्ट किया है कि आर्यिकाएँ मुनियों के द्वारा वन्दनीय नहीं हैं, क्योंकि वे मुनियों के समान संयमी नहीं हैं। श्वेताम्बरमत में आर्यिका जब मुनि को 'मत्थएण वंदामि' कहती है तब मुनि भी ऐसा ही कहते हैं। यह उनके यहाँ उचित है, क्योंकि दोनों सवस्त्र होने से असंयमी हैं। किन्तु दिगम्बर मत में मुनि निर्ग्रन्थ होने से संयमी होता है और आर्यिका सवस्त्र होने से संयमासंयमी। अतः मुनि का आर्यिका के 'नमोऽस्तु' के उत्तर में 'नमोऽस्तु' कहना अनुचित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'वन्दामि' या 'वन्दे' शब्द मुनि के साथ ही प्रयोज्य है, आर्यिका के साथ नहीं, चाहे वह किसी के भी द्वारा प्रयुक्त किया जाय। यदि श्रावक आर्यिका के प्रति मुनि के समान ही 'वन्दामि' या 'नमोऽस्तु' शब्द के द्वारा विनय प्रकट करते हैं, तो इससे सिद्ध होता है कि वे आर्यिका को मुनितुल्य संयमी मानते हैं, जो श्वेताम्बर मत का अनुसरण और दिगम्बर मत की अवहेलना है। यह मिथ्यात्व का लक्षण है। अतः दिगम्बरों को दिगम्बर मत के अनुसार ही प्रवृत्ति करनी चाहिये।

निष्कर्ष यह कि आर्यिकाओं के उपचारमहाव्रती होते हुये भी उनके साथ परमार्थ महाव्रतियों के समान विनयोपचार नहीं किया जा सकता, अपितु उत्कृष्ट श्रावकों के समान ही किया जा सकता है। आर्यिकाएँ पूज्य हैं, किन्तु उनकी पूज्यता उपास्यवत् नहीं है, अपितु उत्कृष्ट उपासकवत् है। दूसरे शब्दों में, आर्यिकाएँ आभ्यन्तर संयमासंयम एवं बाह्य द्रव्यसंयम के कारण पूज्य हैं, किन्तु मुनि आभ्यन्तर और बाह्य दोनों संयमों के धनी होते हैं, इस कारण वे परमपूज्य हैं। अतः दोनों के विनयोपचार एवं आहारदान सम्बन्धी पूजाविधियों में अन्तर होना अनिवार्य है।

रतनचन्द्र जैन

## गीत

# कोई एक किसी दूरी को

अशोक शर्मा

कोई एक किसी दूरी को अंतराल में होना है  
जहाँ जहाँ कुछ पाना है वहाँ-वहाँ कुछ खोना है।

तन से मन की दूरी सबको मिली विरासत में  
'और ले लिया कुछ साँसों ने हमें हिरासत में  
साथ-साथ चलते हैं लेकिन होते साथ नहीं  
यही विवशता साले हरदम देह-रियासत में  
अपने-अपने गलियारे का दर्द सभी को ढोना है॥

अपने-अपने दुःख-सुख की है धूप-छाँव अब नीड़ों में  
जो हुए पराजित अंतर में, वे भटके बाहर भीड़ों में

अपनी पीड़ाएँ सहकर जो पीते औरों के आँसू  
यह मैंने तुमने देखा है वे सब शामिल हैं पीरों में  
जिनके जैसा होना है उनके जैसा बोना है॥

आँख हमारी नींद हमारी पर सपने बेगाने हैं  
जितने भी अफसाने हैं सब पर-पीड़ा अफसाने हैं  
जो दिन में अपने हो न सके बन आते सपने नीदों में  
इस मृग तृष्णा में प्यासे मन फिर और-और अकुलाने हैं  
उजड़े रेत-घरौदों में बस रेत ओढ़कर सोना है॥

अभ्युदय निवास, 36-बी,  
मैत्रीविहार, सुपेला, भिलाई (दुर्ग), छत्तीसगढ़

# अपने आदर्शों के पीछे चलो दुनिया के पीछे नहीं

आचार्य श्री विद्यासागर

संसार में कोई यदि आदर्श मार्ग पर चलना चाहता है तो उससे कहा जाता है कि तुम अपने आदर्शों के पीछे, अपने गुरुओं के पीछे चलना, दुनिया के पीछे नहीं चलना और इस दुनिया के पीछे भी नहीं पड़ना। यही सूत्र मुझे आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने दिया था। उन्होंने हमसे कहा था - तुम्हें कछ कहना नहीं है, कर्त्तव्य समझकर करते जाना और करते ही चले जाना। सब कुछ होता चला जायेगा। बस पीछे मुड़कर नहीं देखना और न ही कहीं पर रुकना। यदि कहीं पर रुकते हैं तो बहुत सी रुकावटें आ जाती हैं। यह कोनी क्षेत्र का इस बार का प्रथम रविवार है और शीतकाल के प्रवास की आप लोगों ने अभी बात की, तो इस बारे में हम कुछ कह नहीं सकते हैं, क्योंकि बंधन से मुक्त होकर तो आये हैं। इस बार तो और पाँच माह का चातुर्मास था। इसलिए पाँच माह के बंधन के बाद पुनः बन्धन की बात स्वीकारना ठीक नहीं। आगे के बारे में तो कुछ कह नहीं सकते हैं। आज तो मैं बैठा बैठा सुन रहा था। अच्छा लग रहा था। अभी ऐलक जी ने कहा था - असंयमी कैसा होता है? तो कोयले के समान कहा गया था। इसलिये कोयले से बचना चाहिए, उस जलते हुए कोयले को छूते हैं तो, हाथ जल जाते हैं। वैसा छूते हैं, तो हाथ काले हो जाते हैं। हम यह कहना चाहते हैं कि यदि हम असंयमी से बचते, यानी (जनता की ओर इशारा) आप लोगों से बचते तो आप कहाँ से आते? ये मंच पर बैठे इतने सारे महाराज कहाँ से आते? इसलिये हमारा कहना असंयमी से एकदम बचना नहीं, लेकिन असंयमियों में रचनापचना नहीं है। जैसे कोयला जब जलता है तभी भोजन पकता है, यदि वह जले न तो आपका भोजन कैसे बनेगा? वैसे ही गृहस्थ जो होता है, वह गृहस्थी के बंधन में बँधा होता है, अपनी संतान को संस्कारवान बनाता है, वह स्वयं बंधन में रहकर संस्कार देता है। उसके संस्कार ऐसे होते हैं कि उसकी संतान फिर बंधन को

**28 नवम्बर 2001 को प्रातः दि. जैन अतिशय क्षेत्र कोनी जी में आचार्य श्री का ससंघ पदार्पण हुआ। वहाँ तीसवें आचार्य पदारोहण दिवस पर 2 दिसम्बर 2001 को दिया गया प्रवचन**

स्वीकारना नहीं चाहती। वह संसार के बंधन में रचनापचना नहीं चाहती। उसी की विशेषता है कि इतने सारे साधक आज मंचासीन हैं।

एक व्यक्ति रास्ते से जा रहा था। उसके पास जेब में कोयला है। एक गुफा के रास्ते से जा रहा है, उसने दूसरे को रास्ता बताने के लिये क्रास लगा दिया और आगे बढ़ गया। बहुत से पीछे आने वालों का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसलिए कोयला काम तो करता है। हमने भी यहाँ आये ऐसे कोयलों को छाँटा, जिनमें सागर, जबलपुर, ललितपुर आदि आदि स्थानों से अच्छे-अच्छे कोयलों को छाँटा और आज हीरे जैसे बने बैठे हैं। यह सब आप देख ही रहे हैं। यह बात सत्य है कि गुरु के गुणों की महिमा गाने से गुरु के प्रति बहुमान बढ़ता है। हमारे लिये गुरुमहाराज ने जो कहा था वही मैं कर रहा हूँ। पद की कोई बात नहीं है। हमें कार्य की ओर दृष्टि रखना चाहिए। अपने कार्य को कर्त्तव्य दृष्टि से करना चाहिए। मैंने तो अपने कार्य को किया है और करता जा रहा हूँ। मैं तो बहुत छोटा था। गुरुमहाराज ने इतनी वृद्धा वस्था में मुझे जैसे अनगढ़ के लिये जो दिया, इस योग्य बना दिया। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, सब गुरु महाराज का आशीर्वाद था। उनकी आज्ञा का पालन करता जा रहा हूँ।

आज आप लोग बाँधना चाहते हो और वचन चाहते हो, लेकिन हमारे लिये गुरु महाराज ने कहा था - किसी को वचन नहीं देना। यदि कोई आपके वचनों को सुनने की इच्छा रखता है, तो प्रवचन दे देना। आप लोग कोने-कोने से आ जाते हैं और हमारी बात को सुनकर चले जाते हैं। मैं भी सब की

सुन लेता हूँ और सबके लिये यही कहता हूँ- देखो हम किसी को 'हाँ' नहीं कहते, तो किसी को 'न' भी नहीं कहते हैं। यदि हम किसी को हाँ कह दें तो दूसरा नाराज हो जायेगा और उसके लिये 'न' कह दें तो वह नाराज हो जायेगा। इसलिये 'देखो' हमारा सूत्र-वाक्य है। यह तो हमारे पास सदा मिलेगा। हमें तो गुरु महाराज ने कहा था- सुनना सबकी पर करना मन की। बस में वही कर रहा हूँ, सबकी सुनता हूँ और किसी को नाराज नहीं करता हूँ। जैसे आप लोग अपनी दुकान चलाते हैं, अगर छोटा लड़का भी आ जाता है तो उसे भी ददा ददा कहकर अपनी दुकान चलाते हैं। उसे नाराज नहीं करते हैं, बस मैंने भी अपनी दुकान को चलाने का तरीका आप लोगों से सीखा है। किसी को नाराज नहीं करना और अपना काम करना। इसी का परिणाम है इतनी बड़ी दुकान है। गुरु महाराज ने कहा था- संघ को गुरुकुल बनाना। बस यह सब उनका ही आशीर्वाद है। हम तो बस आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की एजेंसी चला रहे हैं। मैं तो बस एक एजेंट की तरह काम कर रहा हूँ और करता ही जाऊँगा। यह मंच बड़ा होता जा रहा है। यह सब उन्हीं की कृपा का फल है।

गंगा नदी जैसे गंगोत्री से बहुत पतली सी धार के रूप में निकलती है, वह अपनी यात्रा प्रारंभ करती है। रास्ते में एक छोटी नदी मिली। उसने पूछा कहाँ जा रही हो? वह बताती है और साथ हो जाती है, ऐसी ही दूसरी-तीसरी आदि नदियाँ और बहुत सारी नदियाँ मिलकर एक विशाल रूप में वह गंगा नदी बन जाती है। वैसे ही हम भी कुछ नहीं है भैया, इन सब लोगों ने मिलकर हमें बड़ा महाराज बना दिया है। इन लोगों ने हमारे साथ चलना चाहा, हमने कहा - चलो, अच्छी बात है, हमें तो कोई बाधा नहीं है। जैसे गंगा नदी बड़ी हो गई, वैसे ही यह संघ बड़ा होता चला गया। आप लोगों ने बताया 29 वर्ष पूरे हो गये, यह 30वाँ वर्ष प्रारंभ हो गया। मुझे तो

# नई सहस्राब्दी और भारत

डॉ. अशोक सहजानन्द

पता नहीं चला कैसे यह समय निकल गया। वैसे भी हमारा तो अब रिटायरमेंट का समय आ गया। कोई यदि सर्विस करता है, तो 30-35 साल की सर्विस करके रिटायर हो जाता है। अब यह बात इन सबको (यानि संघ को) बता दो। हमें बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम तो जैसा महाराज ने कहा था, वैसा कर रहे हैं। हम तो गुरु महाराज के द्वारा प्राप्त इस पथ पर उनके दिशा निर्देश के अनुसार चल रहे हैं। उन्होंने पथ पर चलने के लिये दिशा निर्देश के साथ संकेतों के कुछ साइनबोर्ड भी दिये हैं। उन्हीं साइनबोर्डों को अपने पास रखकर चल रहा हूँ। हमने सुना है कोई प्रतिभावान् विद्यार्थी है, वह यदि पेपर में कहीं एक जगह गलती कर देता है लेकिन अपना पेपर साफ सुथरा रखता है, अच्छी राईटिंग में लिखता है तो उस पर भी वह अपने नम्बर बढ़ा लेता है, वैसे ही मैंने भी श्री ज्ञानसागर जी महाराज का पेपर एकदम साफ-सुथरा रखा है, जैसा उन्होंने कहा वैसा ही किया और कर रहा हूँ और अपनी चर्चा को एकदम साफ सुथरा बनाये रखा है। अब तो नम्बर पूरे मिलेंगे, मिलना चाहिए। जैसे प्रतिभावान् विद्यार्थी को पेपर लिखते समय ज्ञात ही नहीं रहता है कि 3 घंटे कैसे निकल गये, वैसे मुझे भी ज्ञात नहीं है कि ये 29 वर्ष कैसे निकल गये? मुझे तो ये 29-30 वर्ष 3 घंटे जैसे लगे। मुझे तो ज्ञात आपने करा दिये, वैसे ही इन महाराज लोगों को भी बता देना कि 29 वर्ष हो गये और आप लोगों को भी ध्यान रखना है। हमने भगवान महावीर स्वामी के इस शासन काल में उन्हीं के बताये हुए मार्ग का अनुसरण किया है। यह सब गुरुदेव का आशीर्वाद एवं उनकी असीम कृपा का प्रतिफल है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह पथ उन्हीं ने हमें दिया है। यह पथ भी उनका और पाथेय भी उनका और पथ पर चलने के लिये यह पद भी उनका, मैं तो बस चल रहा हूँ। उन्हीं श्री ज्ञानसागर जी का अनुसरण कर रहा हूँ। अन्त में उनको याद करता हुआ विराम लेता हूँ।

तरणि ज्ञानसागर गुरु,  
तारो मुझे ऋणीश।  
करुणा कर करुणा करो,  
कर से दो आशीष।

प्रस्तुति- मुनि श्री अजित सागर

एक अहम प्रश्न है कि नयी सदी और तीसरी सहस्राब्दी में भी क्या वे ही शक्तियाँ वर्चस्व बनाये रखेंगी, जो अब तक बनाये हुए हैं। क्या असमानता, शोषण और अन्याय तथा धर्मान्धता एवं धर्म के कंधे पर व्यक्तिगत या समूहगत हित के लिये बंदूक रखने का सिलसिला नयी सदी में भी जारी रहेगा। आशंका यही है कि सब-कुछ पूर्ववत् ही चलता रहेगा। खतरा तो यह भी है कि समूचे संसार में धर्म, संस्कृति, नीति आदि के नाम पर विघटनकारी तत्त्व और अधिक आक्रामक हो जाएँगे।

बीसवीं सदी में कई देशों की भौगोलिक सीमाएँ बदलीं। कुछ पुराने देश टूटे, नये देश जन्मे, पर जिस आम जनता के हित के नाम पर यह हुआ, वह पहले जैसी ही पीड़ित रही। बीसवीं सदी में संसार ने दो-दो महान विश्व युद्धों के बाद अनेक छोटे-बड़े क्षेत्रीय युद्धों की विभीषिका झेली। लाखों लोग मारे गये, करोड़ों बेघर हुए, उनकी त्रासदी से आज की समूची मानवता मुक्त नहीं हो पायी। विश्व के सभी महाद्वीपों में असंतोष, अराजकता और भिन्न-भिन्न आदर्शों के नाम पर रक्तपात जारी है। एक ओर इस्लामिक कट्टरवाद खतरनाक रूप धारण कर रहा है, तो दूसरी ओर ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये हर सम्भव उपाय किये जा रहे हैं। अपने देश में भी कट्टरवाद पनप रहा है, न केवल धर्म के नाम पर, बल्कि जाति के नाम पर भी।

इक्कीसवीं सदी मानवता के लिये शुभ होगी या अशुभ, कहना कठिन है। यह सत्य है कि विज्ञान और टेक्नालॉजी के क्षेत्र में बीसवीं सदी में अभूतपूर्व उन्नति हुई, विशेषकर उत्तरार्द्ध में। अंतरिक्ष यात्राएँ सम्पन्न हुईं। इक्कीसवीं सदी में सूचना क्रांति के कारण छोटी हो गई दुनिया और भी छोटी हो जाएगी। लेकिन इस क्रांति का

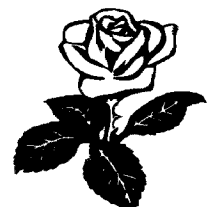
लाभ चंद लोगों तक ही सीमित रहेगा।

ज्योतिषियों की भविष्यवाणी है कि इक्कीसवीं सदी के शुरुआत में ही भारत एक महाशक्ति बन जायेगा। लेकिन महाशक्ति तो रूस भी था, चीन भी है और अमरीका, फ्रांस और ब्रिटेन भी। लेकिन इन देशों में भी प्रायः जनता उन्हीं दुःख-दर्दों में पीड़ित है, जिनसे कि अन्य देशों में। हाँ मात्रा का फर्क जरूर है। भारत अवश्य महाशक्ति बने, पर किस कीमत पर? क्या सामरिक श्रेष्ठता और विज्ञान-टेक्नालॉजी की उन्नति ही किसी देश को शक्ति सम्पन्न बनाती है? हमारा विचार है, कतई नहीं। देश महान और महाशक्ति सम्पन्न तब बनता है, जब उसकी जनता खुशहाल होती है तथा अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण और धर्मांधता तथा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये राष्ट्रहित को बलि चढ़ा देने वाला नेतृत्व नहीं होता। आज भारत में ये सब अपना वर्चस्व बनाये हुये हैं। भ्रष्टाचार जीवन-शैली बन गया है। परंपरागत नैतिक मूल्य दम तोड़ रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी में ये सब तिरोहित हो जायेंगे। भारत को एक सामाजिक आंदोलन चलाने वाला प्रखर नेता चाहिये। ऐसा सामाजिक आंदोलन जो देश की तमाम बुराइयों का उन्मूलन कर दे, ऐसा नेता जिसकी आँखों पर व्यक्तिगत या दलीय स्वार्थ की पट्टी न बँधी हो। जो सत्ता को जनता की चेरी बना दे।

सम्पादक - "आपकी समस्या हमारा समाधान"

239, दरिबा कलाँ, दिल्ली-110006



# जैन श्रमण परम्परा के अद्वितीय श्रमण आचार्य श्री विद्यासागर

मुनि श्री अजितसागर

संसार परिश्रमण के चक्र में फँसे हुए संसारी प्राणी की दशा का वर्णन करने जायँ तो उसका वर्णन करना असंभव है, और उसके दुःख के बारे में कुछ लिखना चाहें तो इतने शब्द नहीं कि पूरा-पूरा लिखा जा सके। अनादिकाल से संसार सागर में पड़ा

हुआ संसारी प्राणी इन्द्रिय सुख और दुःख की लहरों के थपेड़ों को सह रहा है। संसार का मोह ही इसके संसार को बढ़ाने का कारण है। इस संसारसागर से यदि कोई पार होना चाहता है, तो उसके लिये हमारे आचार्यों ने कहा है कि जो रत्नत्रयरूपी नाव में बैठकर, समता और संयम की पतवार को हाथ में लेकर नाव को खेता है, वह निश्चित रूप से एकदिन संसारसागर से पार हो जाता है। आज वर्तमान में इस भौतिकवादी युग में, जहाँ पर इन्द्रियों के विषयों का माया जाल चारों तरफ फैला है, एक अप्रतिम महायोगी, जैन श्रमण परम्परा के अद्वितीय श्रमण, ज्ञानध्यान की अनुपम कृति, जिनके अन्दर विद्या का सागर लहरा रहा है, ऐसे महान दिगम्बरजैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने भी संकल्प लिया और रत्नत्रयरूपी नाव में स्वयं को सवार कर, समता और संयम की पतवार को हाथ में लेकर इस संसार सागर से पार करने का सतत पुरुषार्थ कर रहे हैं। आचार्य भक्ति में कहा है-

**गुरुभक्ति संजमेण य, तरंति संसारसागरं घोरं।**

**छिण्णंति अट्टकम्पं जम्पणमरणं ण पावेत्ति।।**

ऐसे गुरु की भक्ति करने से शिष्य घोर संसारसागर से तर जाता है, आठ खर्मों का क्षय भी कर सकता है, और जन्म मरण से छुटकारा भी पा जाता है। आचार्य परमेष्ठी का लक्षण कहा है- जो स्वयं मोक्षमार्ग पर चलते हैं, और जो भव्य जीव मोक्षमार्ग पर चलना चाहते हैं, उन्हें चलाते हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। आज हम देखते हैं कि बालयति संघ के निर्माता परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ऐसे ही आचार्यत्व को अपने जीवन में धारण करके वर्तमान में भौतिकता की ओर दौड़ने वाली युवा पीढ़ी को धर्म की ओर आकृष्ट कर रहे हैं। इस आधुनिक युग के परिवेश में धर्म की बात को इन युवाओं के मन तक पहुँचाया और संयम एवं वैराग्य का पाठ इनको पढ़ाया और उनके मन में संयम व वैराग्य का बीज बोया, इसी का परिणाम है कि वर्तमान में युवा दिगम्बर जैन मुनियों को आप देख रहे हैं।

अब आपका ध्यान उन क्षणों की ओर ले जाना चाहता हूँ, जिन क्षणों में एक वयोवृद्ध 81-82 वर्षीय आचार्य अपनी गुरुता को छोड़कर अपने ही शिष्य जिसे क, ख, ग, से पढ़ाया और संयम का

आचार्य श्री के 30वें आचार्यपदा-  
रोहण दिवस पर विशेष आलेख।  
आचार्यपदारोहण तिथि मार्गशीर्ष कृष्ण  
द्वितीया, वि.सं. 2029

दान देकर दिगम्बर मुनि बनाया उस 26 वर्षीय दिगम्बर मुनि को अपना 'आचार्यपद' प्रदान करके निरापद होकर आत्मस्थ होकर सल्लेखना की साधना में लग गये। ऐसे महान आचार्य, ज्ञानमूर्ति श्री ज्ञानसागर जी महाराज थे, जो ज्ञान की अनुपम धरोहर, शान्तिमूर्ति

एवं मान-सम्मान की भावना से कोसों दूर थे। ऐसे आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज ने अपने शिष्य मुनिश्री विद्यासागर जी महाराज को मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया वि.सं. 2029, 22 नवम्बर 1972 को नसीराबाद जिला अजमेर (राज.) में अपना चार्य पद का त्याग करके, अपने ही हाथों मुनि विद्यासागर जी को आचार्यत्व के सिंहासन पर बिठाकर आचार्य पद से सुशोभित किया और स्वयं नीचे बैठकर 'नमोऽस्तु' किया और निवेदन किया- हे आचार्यवर! आज से आप हमारे आचार्य हैं। हमारा यह शरीर जीर्ण हो गया है। मुझे सल्लेखना व्रत प्रदान करके अपने निर्यापकत्व में हमारा समाधिमरण करायें। श्री ज्ञानसागर जी की भावना आचार्य श्री विद्यासागर जी ने कुशल निर्यापक बनकर पूर्ण की थी।

अब सोचनीय बात यह है कि एक 26 वर्षीय मुनि विद्यासागर जी में वह क्षमता श्री ज्ञानसागर जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखी थी, इसलिये उन्होंने अपने 'आचार्य पद' का भार उन्हें सौंपा था। योग्यता के आधार पर ही व्यक्ति को उच्च पदों पर आसीन किया जाता है, इसीलिये किसी शायर ने लिखा है-

**उस आदमी को सौंप दो, दुनिया का कारोबार।**

**जिस आदमी के दिल में, कोई आरजू न हो।।**

ऐसे व्यक्तित्व के धनी को अपने आचार्यत्व का भार सौंपा, जो जन रंजन से दूर आत्मरंजन के लिये निर्जन स्थानों को अपना पड़ाव बनाता है और अध्यात्म रस से भरपूर गाथासूत्रों को अपने मानस के चिन्तन की स्वर लहरी बनाता है। यह बात अलग है कि आचार्य गुरुवर यदि जंगल में भी पहुँच जाँएँ तो वहाँ का वातावरण मंगलमय हो जाता है। ये गुरुवर ख्याति, पूजा, लाभ से कोशों दूर रहते हैं, और परनिन्दा और आत्मप्रशंसा की बात उनके मुख से कभी नहीं निकलती। इनकी चर्या में संयम और वैराग्य की बात हरपल दिखती है। ऐसे आचार्य गुरुवर का यह 30वाँ आचार्य पद दिवस है, जो भव्य जीवों के लिये कल्याण का मार्ग दिखानेवाला है।

आचार्यश्री का जीवन आचरण की कसौटी पर कसा हुआ जीवन है, जो स्वयं चलते हुए इस मार्ग पर चलने वालों के लिये सही दिशा बोध प्रदान करता है। उन्होंने अहिंसा, और करुणा को प्रत्येक मानस का विषय बनाया है। ऐसे आचार्यश्री के व्यक्तित्व को हम देखते हैं,



तो किसी शायर की ये पंक्तियाँ सार्थक नजर आती हैं-

अमल से जिन्दगी बनती है, जन्म भी जहन्नुम भी।

अभी भी गया क्या है, बदल दे जिन्दगी अपनी।।

हम अपनी जिन्दगी के मालिक स्वयं हैं। हम जैसा बनना चाहें, वैसा बन सकते हैं। हम आज उन्नति करना चाहते हैं, पर कैसी उन्नति चाहते हैं? धन-वैभव की उन्नति को अपनी उन्नति मान लेना सबसे बड़ी भूल है। वस्तुतः उन्नति क्या है यह इन पंक्तियों में देखें-

रूह की आजादी, रूहानी तरक्की में है।

दौलत की तरक्की हुई तो रूह भी खतरे में है।।

आत्मा की आजादी सबसे बड़ी उन्नति है। आचार्य श्री का व्यक्तित्व ऐसा ही है, जिन्होंने मोह के सारे बंधनों को तोड़कर अपने आपको निर्मोही बनाया है। आत्मा की आजादी को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया, विषय वासनाओं से दूर रहकर मोक्ष के पथिक बनकर

भटके-अटके पथिकजनों को समीचीन मार्ग को दिखाया है। स्वयं चलते हुए बहुत से साधकों के लिये अपनी वरदानी छाँव को प्रदान करके उनके मार्ग को प्रशस्त किया। ऐसे आचार्य परमेष्ठी के व्यक्तित्व को हम कलम से लिखने का प्रयास करें तो सूरज को दीप दिखाने जैसी बात होगी। ऐसे परम आराध्य गुरुवर ने मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिये पनाह दी, और मेरे जीवन के अज्ञानरूपी तिमिर का हरण करके सही दिशा बोध प्रदान किया और संसार सागर से पार होने के लिये मुझे भी अपने जैसी रत्नत्रयरूपी नाव में बिठाकर समता और संयम की पतवार प्रदान की। ऐसे अपने गुरुवर का उपकार इस जीवन में क्या, अनेक भवों में भी नहीं चुका पाऊँगा। चरणों में शत-शत नमन। इन पंक्तियों के साथ विराम लेता हूँ-

मेरे मालिक अपनी अदालत में इतनी तो जगह रखना।

में रहूँ या न रहूँ, मेरे गुरुवर को सलामत रखना।।

## आचार्य श्री विद्यासागर का चातुर्मास अभूतपूर्व धर्मप्रभावना के साथ सम्पन्न

जबलपुर। परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के चातुर्मास के अवसर पर यहाँ सम्पूर्ण देश के कोने-कोने से तकरीबन 5 लाख श्रद्धालुओं का आगमन दयोदय पशु संवर्धन एवं पर्यावरण केन्द्र (गौशाला) तिलवाराघाट पर हुआ। वहीं कार्यक्रमों के आयोजन की श्रृंखला ने धर्म एवं नैतिकता की प्रभावना को द्विगुणित कर दिया।

चातुर्मास स्थापना के साथ ही गौशाला विकासोन्मुख हो उठी। वहीं पर्युषण पर्व के दस दिवसी आयोजन में देश भर के मूर्धन्य विद्वानों का जमघट दयोदय तीर्थ पर उमड़ पड़ा। आचार्य शांतिसागर जी का समाधि दिवस, रक्षाबंधन पर्व, पार्श्वनाथ भगवान का निर्वाण दिवस (मुकुट सप्तमी) कार्यक्रमों के साथ ही करेली में आयोजित पंचकल्याणक की बचत राशि 11 लाख रुपये (जिसमें से 6 लाख पूर्व में एवं 5 लाख दयोदय परिसर में) श्री सम्मेद शिखर जी विकास हेतु भेंटकर दान राशि के सदुपयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया।

दीन-दुखियों की सेवा भावना से स्थापित भाग्योदय तीर्थ (सागर) द्वारा दयोदय में चिकित्सा शिविर का आयोजन कर 200 मरीजों का परीक्षण कर 60 मरीजों की चिकित्सा की गई एवं आचार्य श्री के आशीर्वाद से सभी मरीज स्वस्थ होकर गये।

सम्पूर्ण देश से आये डाक्टरों की एक राष्ट्रीय संगोष्ठी 'मेडिकल बेसिस आफ जैनिज्म' एक सारभूत आयोजन रहा। भारत वर्षीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान के नये प्रशिक्षणार्थियों का

प्रवेश सत्रारंभ समारोह आचार्य श्री की मंगल देशना के साथ सम्पन्न हुआ।

जबलपुर के इतिहास में एक और घटना उल्लेखनीय रही। आचार्य श्री के संघ का पिच्छका परिवर्तन समारोह 30 सालों से दीपावली के उपरान्त होता था परंतु जबलपुर में यह दीपावली के पूर्व हुआ। चातुर्मास के सबसे बड़े माने जाने वाले इस आयोजन की स्वीकृति रविवार को आचार्य श्री ने दी और मंगलवार को आयोजन हो गया। डॉ. हीरालाल जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर स्मारिका का विमोचन समारोह भी अत्यधिक गरिमापूर्ण रहा।

आचार्य श्री के सम्मुख उपस्थित होकर आशीर्वाद ग्रहण कर गौरक्षा एवं मांस निर्यात को रोकने से संबंधित दिशा निर्देश प्राप्त करने वाले राजनेताओं में श्रीमती मेनका गाँधी (केन्द्रीय संस्कृति मंत्री), श्री सत्यनारायण जटिया (केन्द्रीय अधिकारिता मंत्री), राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघ चालक श्री के.एस. सुदर्शन जी, म.प्र. के वनमंत्री श्री हरवंश ठाकुर, गृह राज्यमंत्री दीवान चंद्रभान सिंह, म.प्र. मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष श्री गुलाब गुप्ता, जबलपुर के प्रभारी मंत्री अजय सिंह राहुल, म.प्र. विधानसभा उपाध्यक्ष ईश्वरदास रोहाणी, जबलपुर महापौर, सांसद महोदया, विधायकगण के साथ, पत्रकार, साहित्यकार, अधिकारी एवं प्रबुद्धजन व न्यायाधीश भी निरंतर उपस्थित रहे। भारत के सबसे बड़े मार्बल निर्यातक श्री आर.के. पाटनी एवं आचार्य श्री के बचपन के बालसखाओं की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रही।

# समाधिमरण : जीवनसुधार की कुंजी

स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया

काय और कषायों को कृश करते हुए शांत भावों से शरीर के त्याग को समाधिमरण कहते हैं। सल्लेखना, सन्यासमरण, अन्त्य-विधि, पंडितमरण, अंतक्रिया, मृत्यु-महोत्सव, 'आर्याणां महाक्रतुः' आदि सब इसी के नाम हैं। समाधिमरण धारण करने वाले को साधक, क्षपक, प्रेयार्थी आदि कहते हैं।

अनेकों अपराध करने पर भी अंत में मनुष्य क्षमा माँगने पर जैसे अपराधों से मुक्त हो जाता है, उसी तरह जीवन भर पापारंभ करनेवाला भी अगर अन्त समय में समाधि धारण कर लेता है तो अवश्य सुगति का पात्र होता है। 'अन्त भला सो सब भला' इस बात को जैन ही नहीं जैनैतर संप्रदायों में भी महत्त्व दिया गया है। वैदिक पुराणों में अनेक ऐसे आख्यान आते हैं जिनमें अन्त समय में नारायण का नाम लेने वाले पापी भी बैकुण्ठगामी हुए हैं। अजामील ने सारी जिन्दगी पापकर्म में बिताई परन्तु अन्त समय में नारायण का नाम लेने से वह बैकुण्ठवासी हुआ। इसी बात को जैन कथाकारों ने भी दूसरे शब्दों में चित्रित किया है। जीवन्ध कुमार ने मरणासन्न कुत्ते को गणमोकार मन्त्र दिया तथा तीर्थंकर पार्श्वप्रभु ने अग्नि में जलते हुए दो सर्पों को नमस्कार मंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से ये तिर्यंच जीव भी देवगति को प्राप्त हुए। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद अपना कार्य पूरा हुआ जानकर सहर्ष मृत्यु का स्वागत करने वाले भीष्म पितामह की 'इच्छा मृत्यु' (इच्छापूर्वक मरण) भी जैन सल्लेखना से मिलती हुई है।

सारी जिन्दगी जप - तप करने पर भी अगर मृत्यु के समय समाधि धारण न की जावे तो सारा जप तप उसी तरह वृथा होता है जिस तरह विद्यार्थी पूरे वर्ष भर पाठ याद करे और परीक्षा के समय उसे भूल जाये या शस्त्राभ्यासी योद्धा रण क्षेत्र में जाकर कायर बन जाये या कोई दूर देशान्तर से धनोपार्जन करके लाये और उसे गाँव के समीप आकर लुटा बैठे। बिना समाधिमरण के चारित्रवान् जीवन भी फलहीन वृक्षकी तरह निस्सार होता है। इसी को स्वामी समन्तभद्रने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है -

अन्तक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।

तस्मात् यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयत्नितव्यम्॥

(रत्नकरंडश्रावकाचार, 123)

अर्थ- समस्त मतावलम्बी तप का फल अन्तक्रिया समाधिमरण पर ही आधारित बताते हैं अतः पुरुषार्थ भर समाधिमरण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय संस्कृति में जो अन्तक्रिया पर इतना महत्त्व दिया गया है उसमें वैज्ञानिक रहस्य है, इससे भारतीय महर्षियों के आत्म-तत्त्व ज्ञान की पराकाष्ठा जानी जाती है। मृत्यु के समय अगर आत्मा कषायों से सचिवकण (चीकनी) नहीं होती तो वह अनायास शरीर त्याग कर देती है और उसे मारणांतिक संक्लेश भी विशेष नहीं होता, उसका मानसिक संतुलन ठीक रहता है जिससे स्वेच्छानुसार

सद्गति प्राप्त करने में वह समर्थ होती है, और जब सद्गति प्राप्त हो जाती है तो पूर्वोपार्जित दुष्कर्म भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते, और अगर अन्त समय में परिणाम कलुषित हो जाते हैं तो दुर्गति प्राप्त होती है, जिसमें पूर्वोपार्जित शुभ कर्मों को भोगने का अवसर ही नहीं मिलता। इस तरह सारा काता पीदा कपास या गुड़ गोबर हो जाता है और दुर्गति की परम्परा बढ़ जाती है। इससे जाना जा सकता है कि समाधिमरण की जीवन में कितनी महत्ता है।

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।

पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना॥

(मृत्यु महोत्सव, 16)

(तपे हुए तप, पालन किए हुए व्रत और पढ़े हुए शास्त्रों का फल समाधिमरण में ही है- बिना समाधिमरण के ये वृथा हैं।)

यहाँ यह शंका नहीं करना चाहिए कि 'जब समाधिमरण से ही सब कुछ होता है तो क्यों जप-तप-चारित्र की आफत मोल ली जाय, मरण समय समाधि ग्रहण कर लेंगे।' परन्तु ऐसा विचारना ठीक नहीं क्योंकि सारी जिन्दगी तप और चारित्र, काय तथा कषाय के कृश करने का अभ्यास इसीलिए किया जाता है कि अन्त समय में भी परिणाम निर्मल रहे और समाधि ग्रहण करने में सहूलियत रहे। संभवतः इसीलिए कुन्दकुन्द आचार्य ने सल्लेखना को शिक्षाव्रत में स्थान देने की दूरदर्शिता की है। समाधिमरण और तपःचारित्र में परस्पर कार्य-कारणरूपता है। जब उपसर्ग और अकाल मृत्यु का अवसर आ उपस्थित हो यथा - सिंहादि क्रूर जन्तुओं का अचानक आक्रमण, सोते हुए घर में भयंकर अग्नि लग जाना, महावन में रास्ता भूल जाना, बीच समुद्र में तूफान से नाव डूबना, विषधर सर्प का काट खाना, आदि, तब पूर्वकृत चारित्र का अभ्यास ही काम आता है। सारी जिन्दगी चारित्र में बिताने वाला अगर अन्त समय में असावधान होकर अपने आत्मधर्म से विमुख हो जाये तो उसका दोष तपः चारित्र पर नहीं है, यह तो उसके पुरुषार्थ की हीनता और अभ्यास की कमी है या बुद्धि विकार है। इसे ही तो 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः' कहते हैं।

समाधिमरण का इच्छुक मृत्यु से भयभीत नहीं होता। वह अच्छी तरह समझता है कि मरण आत्मा का नाश नहीं है, मरण तो दूसरा जन्म धारण करने को कहते हैं। वह मृत्यु को महोत्सव समझता है, इसे आत्मा का शरीर के साथ विवाह समझता है, शरीर का शरीर के साथ विवाह तो लौकिक है वह इसे अलौकिक विवाह समझता है और इस तरह मृत्यु का सहर्ष आलिङ्गन करता है। तेल हीन दीप और दग्ध रज्जु तथा वृक्ष के सूखे हुए पत्ते की तरह जीर्ण और शिथिल शरीररूपी नौकर को जब वह अपने चारित्र साधन के लिये अयोग्य समझता है तो उसे पेंशन देकर दूसरे योग्य नौकर (शरीर) का प्रबन्ध करता है। इतनी उदात्त भूमिका पर स्थित साधक कभी कायर नहीं हो सकता, वह तो परम मरणशूर, आत्म विजयी, मृत्युंजयी है।

आत्मघात (विष खाकर, तालाब कुँए आदि में डूबकर, स्वयं फाँसी लगाकर या शस्त्रास्त्र से अपनी जीवनलीला समाप्त करना), सती प्रथा (मृत पति के साथ चिता में जल जाना), आमरण अनशन (अपनी किसी माँग की पूर्ति के लिये मरण पर्यन्त आहार त्याग करना), आदि समाधिमरण की कोटि में नहीं आ सकते। समाधिमरण और इनमें आकाश-पाताल, काँच-हीरा, प्रकाश-अंधकार, दिन-रात, और 3,6 के अंक की तरह महान अन्तर है। ये कषायों की तीव्रता से, स्वार्थ की भावना से और कलुषित हृदय से किए जाते हैं जब कि समाधिमरण शान्त परिणामों से विवेकपूर्वक बिना किसी वाञ्छा के किया जाता है।

दुक्खखओ कम्पखओ समाहिमरणं च बोहिलाओ या  
मम होउ जगद्बान्धव तव जिणवर चरणसरणेण॥

जैन निबन्ध रत्नावली  
(प्रथम भाग) से साभार

1. गुणभद्ररचित उत्तरपुराण में भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा 'णमोकार मन्त्र' सुनाये जाने का उल्लेख नहीं है। उसमें मात्र यह कहा गया है कि नाग और नागी उनके उपदेश से शमभाव को प्राप्त हुए और मरकर धरणेन्द्र - पद्मावती हुए। यहाँ सुभौमकुमार पार्श्वनाथ का ही दूसरा नाम है। (देखिए सर्ग 73, श्लोक 95-118 तथा पृष्ठ 703 पर व्यक्ति वाचक शब्दकोष)

सम्पादक

## सिद्धक्षेत्र सम्पेदशिखर जी में भव्य आर्यिकादीक्षा संपन्न

परम पूज्य आ. कल्प विवेक सागर जी महाराज द्वारा दीक्षित परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज की संघस्था आर्यिका 105 विज्ञानमति माता जी ने 18 नवम्बर 2001 को पांच बालब्रह्मचारिणी बहनों को आर्यिकादीक्षा प्रदान की। लौकिक और धार्मिक ज्ञान से सुशिक्षित बहनों के विचारों ने वातावरण को वैराग्यमय बना दिया। आर्यिकाओं के नवीन नामकरण को सुन अपार जनसमुदाय हर्ष से विभोर हो उठा। नवीन नाम इस प्रकार हैं - आर्यिका वृषभमति जी (ब्र. माधुरी, शाहपुर), आर्यिका आदित्यमति जी (ब्र. अर्चना रहली), आर्यिका पवित्रमति जी (ब्र. संध्या नागपुर), आर्यिका गरिमामति जी (ब्र. सीमा करणपुर) आर्यिका संभवमति जी (ब्र. ज्योति रहली) बनीं।

इसी अवसर पर नव दीक्षित आर्यिका आदित्यमति जी के गृहस्थ जीवन के माता-पिता को आर्यिका विज्ञानमति जी की पुरानी पिच्छिका प्राप्त हुई। कार्यक्रम का संचालन नरेन्द्र जी एवं दीपक जी आष्टा ने किया।

शैलेन्द्र सिंघई कटंगी, जबलपुर

## बोधकथा

### धर्मराज का वात्सल्य-भाव

कौरव और पाण्डव दोनों एक ही कुटुम्ब में हुए थे। राज्यलोभ के कारण उनमें परस्पर में विरोध हो गया था। कौरवों ने पाण्डवों को इतना अधिक सताया कि उन्हें वन में भी शान्ति से नहीं रहने दिया। कौरव सौ भाई थे पाण्डव थे पाँच भाई। दुर्योधन कौरवों में सबसे बड़ा था। एक बार उसे गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया। धृतराष्ट्र ने निवेदन किया धर्मराज युधिष्ठिर से उसे मुक्त कराने के लिए और धर्मराज ने कह दिया अपने छोटे भाई भीम से।

युधिष्ठिर से दुर्योधन को मुक्त कराने की बात सुनकर भीमराज क्रोध से भर उठे। बोले भइया! उस पापी को मुक्त कराने की बात करते हो, जिसके कारण हमें वनवास की यातनाएँ सहना पड़ीं। उस अन्यायी को मुक्त कराने की बात करते हो, जिसने भरी सभा में द्रौपदी को निर्वसन करने का दुस्साहस किया था? धर्मराज भइया! अगर आप किसी और को मुक्त करने की बात करते तो अनुचित नहीं होता किन्तु दुर्योधन को मुक्त कराने में नहीं जाऊँगा।

धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय करुणा से भर गया। करुणाभाव आँखों से बहने लगा। अर्जुन मौन रूप से यह सब सुन भी रहे थे और देख भी रहे थे। उन्होंने भइया युधिष्ठिर की आँखों को देखा और उनके हृदय के वात्सल्यभाव को समझा। वात्सल्य के आगे वे भूल गये दुर्योधन का वैर। उठा लिया अपना गाण्डीव और शीघ्र जा भिड़े गन्धर्वों से। घनघोर युद्ध कर गन्धर्वों को पराजित किया और दुर्योधन को गन्धर्वों से मुक्त करा लाये। धर्मराज ने समझाया - हम परस्पर में सौ कौरव और पाँच पाण्डव हैं। परस्पर में लड़ भिड़ सकते हैं, किन्तु बाहरवालों के लिए हम सदा एक सौ पाँच भाई ही हैं। धर्मराज के वात्सल्य को देखकर और सुनकर भीमराज लज्जित होकर नतमस्तक हो गये।

साधर्मियों पर स्नेह रखना वात्सल्यभाव है। हमारे भीतर युधिष्ठिर जैसी एकता और वात्सल्य की भावना होनी चाहिए। सजातीय की उन्नति हमारी ईर्ष्या का कारण न बने। मतभेद रहे तो भले रहे, पर मनभेद कभी न रहे।

'विद्याकथाकुंज' से साभार

## दयोदय पशु सेवा केन्द्र गोशाला सेसई का उद्घाटन

भगवान महावीर स्वामी के 2600वें जन्म जयंती वर्ष में अहिंसा के पथ प्रदर्शक और देश के महान संत आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से मुनि श्री क्षमासागर जी, मुनि श्री भव्य सागर जी के सात्रिध्य में श्री विठ्ठलभाई पूर्व मंत्री म.प्र. शासन के मुख्य आतिथ्य में दयोदय पशु सेवा केन्द्र गोशाला सेसई का उद्घाटन समारोह भव्यता से सम्पन्न हुआ।

# डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया की अन्तर्यात्रा

डॉ. शीतलचन्द्र जैन

## 3 जनवरी 2002 समाधिमरण दिवस पर विशेष आलेख

जैन न्याय-दर्शन के मूर्धन्य विद्वान्, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया आचार्यप्रवर संतशिरोमणि श्री विद्यासागर जी महाराज तथा 42 मुनिराजों के सान्निध्य में आगमोक्त विधि से सल्लेखना व्रत धारण कर 3 जनवरी 2000 को समाधिमरण को प्राप्त हुए। 88 वर्षीय डॉ. कोठिया को आपके परिजन भाग्योदय तीर्थ, सागर की एम्बुलेंस के द्वारा श्री दिगम्बर जैन रेवातट सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर (देवास) म.प्र. लेकर गए थे। हाथ-पैर तथा शरीर के अन्य भाग सूजने से शरीर कुछ अधिक शिथिल एवं मोटा हो गया था। स्ट्रेचर पर रखकर जब आपको आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के पास लाया गया, तब लगता था कि स्थिति अत्यंत गंभीर है। परन्तु गुरुवर का सान्निध्य एवं आशीष पाकर कुछ ही घण्टों में आप पूर्ण चैतन्य हो गए। इतना ही नहीं, आपने फिर आचार्यश्री से संस्कृत में ही अधिकांश वार्तालाप कर जीवन के शेषांश उन्हीं के चरणों में व्यतीत करने हेतु आग्रहपूर्ण निवेदन किया तथा सल्लेखनापूर्वक समाधि-मरण कराने हेतु भावभरा निवेदन भी किया।

बुधवार 22 दिसम्बर 99 को प्रातः यहाँ पहुँचे डॉ. कोठिया के बारे में आवश्यक पूछताछ कर गुरुदेव ने गुरुवार को 5 दिनों के लिए आहारप्रक्रिया में परिवर्तन हेतु निर्देश दिया। अतः दाल, दलिया, लौकी, मुनक्का, पानी, अनार रस, आँवला एवं नींबू रस तथा जल के अतिरिक्त शेष अन्य प्रकार के आहार का आपने त्याग कर दिया। 29 दिसम्बर 99 को दलिया रूप अन्न का भी 3 दिन के लिये आपने स्वेच्छा से त्याग कर दिया। इस प्रक्रिया से जहाँ शरीरगत मल-विकृति का संशोधन हुआ, वहीं आपके शरीर की सूजन में कमी आयी, हाथ-पैर की शिथिलता कम होकर स्वाश्रित संचालन में विकास हुआ और आवाज भी अधिक स्पष्ट आने लगी। प्रातः

एवं सायं काल दो बार गुरुदेव के मुख से जब आगम/अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को आप सुनते तो सहज/बरबस ही आपके मुख से 'वाह-वाह' निकल पड़ता। साथ ही यह भी वे अक्सर कह उठते कि गुरुदेव! मुझसे देर हो गई। कुछ और शीघ्र आता तो अधिक समय तक यह दुर्लभ अमृतपान करने का सुअवसर प्राप्त कर सकता।

आपके कुटुम्बी भ्राताद्वय श्री विभव-कुमार एवं श्री दुलीचंद कोठिया, बीना (सागर) तथा ब्रह्म. कपिल जैन, खण्डवा के द्वारा की गई अहर्निश वैयावृत्य से आपके मानो सारे कष्ट ही विस्मृत हो गए। साथ ही आचार्यश्री जी का सान्निध्य पाकर आपके परिणामों में विशुद्धता प्राप्त हुई, अतः आपने अनेक बार मुनिराजों को देखकर आचार्यश्री जी से निवेदन किया कि मुझे भी इस श्रेणी में सम्मिलित कर लीजिए। शारीरिक स्थिति देखकर आचार्यश्री आपको आवश्यक निर्देश देते तो आप उसे शब्दशः पालन करने में तत्पर हो जाते। 2 जनवरी 2000 की शाम को जब आपने स्वेच्छा से नियमित शक्कर तथा बादाम आदि के त्याग करने की भावना प्रदर्शित की तब आचार्यश्री ने पुनः पूछा-पंडितजी! इनको ग्रहण करने का विकल्प है या त्याग करने का? आकस्मिक प्रश्न सुनकर पहले तो वे चौंक गए, फिर पुनः बोले नहीं, इनका तो त्याग करना है। ये ही मुझे प्रिय थे। अब आपके वचनमृत सुनकर ये भी नीरस लगने लगे हैं। अभी तक कुर्सी पर बिठाकर दर्शनार्थ लाये जाने वाले कोठिया जी को मानो संजीवनी वटी ही मिल गई, जो 3 जनवरी को अपने ही कदमों से चलकर गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुँचे थे। बाद में आपने आचार्यश्री से पुनः निवेदन किया कि कम से कम ग्यारह प्रतिमाओं का पालन तो मैं कर ही लूँगा, अतः आप मेरी पात्रता को समझकर व्रत-संकल्प प्रदान करें। आपकी तीव्र भावना एवं जाग्रत

परिणामों से किए गए निवेदन को सुनकर 3 जनवरी को प्रातः 8.45 पर आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने पहले आठवीं तथा बाद में नवमी परिग्रहत्याग प्रतिमा का संकल्प आपको कराया।

3 जनवरी 2000, सोमवार, पौष कृष्ण द्वादशी वी.नि.सं. 2526, विक्रम संवत् 2056 को आपने इस जीवन की अंतिम श्वास अपराह्न 3.50 पर ली। शाम को सिद्धोदय तीर्थ परिसर में ही आपके नश्वर शरीर को विमान में बिठाकर तथा भ्राता विभवकुमार कोठिया के द्वारा अग्नि संस्कार क्रिया सम्पन्न हुई।

### जीवन वृत्त

प्रतिष्ठाचार्य पितामह पं. मकुन्दीलाल जैन के द्वितीय पुत्र श्री हजारीलाल कोठिया की धर्मपत्नी श्रीमती चिरोजाबाई की पवित्र कुक्षि से तीर्थकर पार्श्वनाथ स्वामी की समवशरण स्थली सिद्धक्षेत्र नैनागिरी (छतरपुर) म.प्र. में आषाढ कृष्णा द्वितीया, वि.सं. 1998 तदनुसार 11 जून 1911 को अद्वितीय प्रतिभा के धनी द्वितीय पुत्र दरबारीलाल ने जन्म पाया था। आपके जन्म के 2-3 वर्ष पूर्व ही आपके पिताश्री क्षेत्र पर स्थित बाबा दौलतराम वर्णी जैन पाठशाला के सम्भवतः प्रथम अध्यापक नियुक्त हुए थे। 3 वर्ष की आपकी उम्र में आपके पिता के मित्र हडुआ (सागर) निवासी मालगुजार पन्नालाल जी बड़कुर अपने ग्राम में धार्मिक अध्यापन कार्य हेतु आपके पिताजी को साथ ले गए। वहीं पर आपका प्राथमिक अध्ययन अभी प्रारंभ ही हुआ था कि दुर्दैव आड़े आ गया और मात्र 6 वर्ष की उम्र में ही दरबारीलाल के सिर से पिता की वरदानि छाया छिन गई। माता चिरोजाबाई ने वैधव्यजीवन के साथ बड़ी कठिनाई से आपका एवं छोटी बहिन का पालन-पोषण किया।



## विद्या-अध्ययन

दरबारीलाल ने अपनी कुशल प्रज्ञा से दादा तथा नाना के ग्राम सौरई में विद्याध्ययन कर चौथी कक्षा में अपने विद्यालय के साथ अन्य विद्यालयों में भी श्रेष्ठतापूर्वक प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1925 में जार्ज पंचम के भारत आगमन काल में आपको पारितोषक रूप में जार्ज पंचम की मुद्रावाला मेडल प्रतियोगिता में प्राप्त हुआ। बाद में श्री महावीर दिगम्बर जैन संस्कृत महा., सादूमल से प्रवेशिका, विशारद प्रथमखण्डरूप धार्मिक तथा संस्कृत शिक्षा प्राप्त की। विशेष अध्ययन की भावना से तत्पश्चात् आपने शास. संस्कृत महा., काशी (संप्रति-सम्पू. संस्कृत विश्व.) से संस्कृतप्रथमा एवं बंगीय संस्कृत परीक्षा एस्.ओ., कलकत्ता की व्याकरण परीक्षा में सफलता प्राप्त की। स्याद्वाद महा. वाराणसी में अध्ययन प्राप्त कर नव्यन्याय मध्यमा परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। ज्ञानाराधना की भावना से विद्याध्ययन की इच्छा बलवती होती गई, अतः आपने प्राचीन न्यायशास्त्री, प्राचीन न्यायाचार्य प्रथमखण्ड, काशी हिन्दू विश्व. से, जैनदर्शन शास्त्री, जैनदर्शनशास्त्राचार्य (दो खण्ड), बं.सं. एस्.ओ. कलकत्ता की जैन न्याय (प्रथम) एवं मध्यमा, न्यायतीर्थपरीक्षा भी उत्तीर्ण की। माणिकचंद दिग. जैन परीक्षालय बम्बई से विशारद (द्वितीय एवं तृतीय खण्ड) तथा सिद्धांतशास्त्री परीक्षा के धर्म-न्याय-साहित्य रूप तीनों खण्ड उत्तीर्ण किए।

## गृहस्थाश्रम प्रवेश

युवावय में छिदवाड़ा (म.प्र.) निवासी छोटे साहब श्री खुशालचंद पटोरिया की सुपुत्री चमेलीदेवी के साथ दाम्पत्य जीवन सन् 1936 में प्रारंभ हुआ। आपने भी विद्यालयीन शिक्षा के अतिरिक्त विशारद, साहित्यरत्न, प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सन् 1985 में चमेलीदेवी का अवसान हो जाने पर पं. दरबारी लाल कोठिया के जीवन में विरक्ति के बीज गहरे होते गए।

## अध्यापन कार्य

सन् 1939 में सर्वप्रथम भा.दि. जैन संघ अंबाला में तत्त्वोपदेशक के रूप में आपने कार्य प्रारंभ किया। बाद में पं.

कैलाशचंद सिद्धांतशास्त्री की प्रेरणा से बनारस आ गए और स्था. महा. में रहकर न्यायाचार्य (चतुर्थ) परीक्षा में पास हुए। सन् 1937 में वीर विद्यालय, पपौर जी में 3 वर्ष तक धर्म प्राध्यापक रहकर फिर ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, मथुरा में दो वर्ष तक प्राचार्य पद का दायित्व वहन किया। सन् 1942 से 50 तक पं. जुगल किशोरजी मुख्तार के साहचर्य में रहकर वीर सेवा मंदिर, सरसावा में जैन धर्म के ग्रन्थों के संशोधन, संपादन तथा लेखन कार्यों में दत्तचित्त रहे। वहाँ से सेवानिवृत्त होकर दिल्ली में कुछ दिनों तक जैन पुस्तक भण्डार खोलकर उसका संचालन किया किन्तु शीघ्र विद्यार्थिक कोठिया जी की प्रेरणा से संस्थापित समंतभद्र संस्कृत महा., दिल्ली में प्राचार्य पद पर रहकर सात वर्षों तक संस्था का विकास किया। अध्यापन के साथ विद्याध्ययन भी अनवरत जारी रहा, अतः शास्त्राचार्य (जैनदर्शन) का अंतिम खण्ड तथा एम.ए. संस्कृत परीक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। 3 वर्ष तक दिगम्बर जैन कालेज, बड़ौत में संस्कृत प्राध्यापक रहकर सन् 60 में बनारस हिन्दू विश्व. में प्राच्यविद्या धर्म-विज्ञान-संकायगत जैन दर्शन-न्याय के प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। इसी विश्वविद्यालय में ही सन् 70 से 74 सेवानिवृत्ति काल तक जैन-बौद्ध दर्शन के रीडर पद पर रहकर अध्यापन कार्य करते रहे। इसी बीच जैन साहित्य के मूर्द्धन्य मनोषी पं. जुगल किशोर मुख्तार ने आपकी प्रतिभा का मूल्यांकन कर अपने साहित्य कार्य हेतु मुनि श्री समंतभद्र महाराज के सान्निध्य में कुम्भोज-बाहुबली में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। एवं दिल्ली जाकर एक समारोह आयोजित कर डॉ. कोठिया को अपना 'धर्मपुत्र' घोषित किया।

## साहित्य सेवा

वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट की वाराणसी में स्थापना कर सन् 60 से आप मानद मंत्री के रूप में साहित्यलेखन-प्रकाशन कार्य में संलग्न रहे। अतः आपके मार्गदर्शन में उक्त संस्थान से शताधिक ग्रन्थ प्रकाशित एवं पुनर्मुद्रित भी हुए। संप्रति, आप अध्यक्ष पद पर रहकर जिनवाणी की सेवा में तत्पर थे। श्री गणेश वर्णी ग्रंथ माला काशी के सन् 64

से 77 तक मानद मंत्री रहे, अतः इस संस्था को भी वृद्धिंगत करने एवं साहित्य प्रकाशन में आपका योगदान रहा। तभी यह संस्था आगे शोध संस्थान का रूप पा सकी।

## समाज-सेवा

पच्चीस सौवें भगवान महावीर निर्वाणोत्सव वर्ष के अवसर पर दिगम्बर जैन श्रमण परंपरा का इतिहास लेखन कार्य संपन्न हो, इस भावना से शिवपुरी (म.प्र.) में सन् 73 में नेमीचंद जैन गोदवालों के द्वारा संपन्न कराए गए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा अवसर पर आपने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष के रूप में संस्था के रजत जयंती महोत्सव का आयोजन किया। अधिवेशन में लिए गए निर्णय के अनुरूप ग्रन्थ आलेखन का दायित्व डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य को सौंपा गया। कालान्तर में 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' के नाम से 4 खण्डों में वह ग्रन्थ तत्कालीन उपराष्ट्रपति माननीय श्री बी.डी. जत्ती के करकमलों से विमोचित हुआ। इसी अवसर पर रजत जयंती स्मारिका प्रकाशन का निर्णय तथा 'महावीर विद्या फण्ड' की स्थापना कर जैन विद्वान् या उनकी संतान को शिक्षा कार्य में सहायतार्थ कोष की स्थापना की गई।

## साधु-संगति-

समाज सेवा, प्रवचन, अध्यापन कार्य के अतिरिक्त अवसर प्राप्त होने पर साधु-संगति अवश्य करते थे सन् 80 में श्रवणबेलगोला में चातुर्मास के दौरान लगभग 150 पिच्छिकाधारियों के साथ ऐलाचार्य श्री विद्यानंद महाराज के सान्निध्य में द्रव्य-संग्रह एवं न्यायदीपिका ग्रंथों का वाचन करने का अवसर प्राप्त किया। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में पं. फूलचंद जी सिद्धांतशास्त्री, पं. कैलाशचंदजी सिद्धांतशास्त्री, पं. जगमोहनलालजी सिद्धांत शास्त्री, पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं. जवाहरलालजी सिद्धांत शास्त्री, पं. बालचंदजी सिद्धांत शास्त्री के साथ षट्खण्डागम एवं कषायपाहुड के वाचना शिविरों में भी आपने भाग लिया तथा सागर खुरई, ललितपुर आदि में वाचन करने का सौभाग्य भी प्राप्त किया।

## साहित्य-सृजन

समय-समय पर जैन धर्म-दर्शन के विभिन्न पक्षों पर आपने अपनी मेधा का उपयोग कर संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी में ग्रन्थों का आलेखन किया। संस्कृत रचनाओं में प्रमुख हैं- (1) जैन दर्शने प्रमाण चिन्तनम्, (2) जैनप्रमाण मीमांसायाः स्वरूपम्, (3) जैन दर्शने करुणायाः स्वरूपम् (4) श्रुतपंचमी, (5) जम्बूजिनाष्टकम्, (6) आत्मा अस्ति न वा, (7) द्रव्यसंग्रहसंस्कृत टीका, (8) न्यायदीपिकायाः प्रकाशाख्यं टिप्पणम् तथा (9) न्यायदीपिकायाः प्रश्नोत्तरावलिः। प्राकृत भाषा में आपके द्वारा 'जिनणियाय-विज्जाविगासो' (अप्रकाशित) न्याय विषयक शोधपरक प्रबंध लिया गया है। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषागत 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' ग्रंथ का संपादन एवं भाषा लेखन तथा 'नियमसागर' ग्रन्थ की 53 वीं गाथा की विस्तृत व्याख्या भी लिखी है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में आपने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की पीएच.डी. हेतु सन् 69 में जैन तर्कशास्त्र में अनुमान विचार नामक शोध प्रबंध लिखा। वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट से प्रकाशित उक्त शोध प्रबंध के अतिरिक्त आपकी 'जैन तत्त्वज्ञान मीमांसा' कृति में विभिन्न मौलिक निबंध संकलित हैं। 'जैन दर्शन और न्यायः उद्भव और विकास', 'जैन-दर्शन और न्यायः एक परिशीलन', 'महावीर का जीवन संदेश' तथा 'जैन न्याय की भूमिका' नामक कृतियाँ भी आपकी सफल लेखनी से पाठकों को उपलब्ध हो सकीं।

सन् 44 से 93 तक अनवरत चिन्तन-मनन के द्वारा आपके कुशल संपादन में 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड', 'न्यायदीपिका', 'आप्त परीक्षा', श्रीपुरपार्श्वनाथ-स्तोत्र', 'शासन-चतुर्विंशिका', 'स्याद्वाद-सिद्धि', 'प्राकृत पद्यानुक्रम', 'प्रमाणप्रमेयकलिका', 'समाधिमरणोत्साह दीपक', 'द्रव्यसंग्रह', 'प्रमाण परीक्षा', 'पत्र परीक्षा', 'देवागम-स्तोत्र' 'युक्त्यानुशासन', 'अष्टसहस्री' तथा 'जैन पुराण कोश' संपादित होकर विभिन्न प्रकाशनों से प्रकाशित होकर अध्येताओं के लिए पर्याप्त शोधबिन्दु एवं चिन्तन के आयाम उपलब्ध करा रहे हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मृति-ग्रन्थ तथा शोधपरक पत्र-

पत्रिकाओं में आपके द्वारा लिखित 200 से अधिक आलेख भी आपकी प्रतिभा का परिचय सहज ही दिला देते हैं। 'नैनागिरी से गंगा तट तक' आपकी अप्रकाशित आत्म-कथा भी उपलब्ध है।

### सम्मान

जैन समाज के विभिन्न समायोजनों में आपकी प्रखर मेधा का सम्मान न्यायालंकार, न्यायरत्नाकर, न्यायवाचस्पति आदि अलंकारों से संपन्न हुआ। आपकी कृति 'प्रमाण परीक्षा' को उत्तर प्रदेश शासन द्वारा एक हजार रुपये का 'प्रादेशिक सम्मान' प्राप्त हुआ। वीर निर्वाण भारती, नई दिल्ली ने सन् 55 में 2500 रुपये के पुरस्कार के साथ 'न्यायालंकार' उपाधि से विभूषित किया। भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली की स्वर्ण जयंती अवसर पर राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ विद्वान' के रूप में 11000 रुपये के पुरस्कार एवं वाग्देवता प्रतिभा, शाल-श्रीफल से सम्मानित हुए। म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की अध्यक्षता में जैन समाज गुना द्वारा 'जैन पुराण कोष' के संपादन कार्य हेतु 5000 रुपये की सम्मान राशि प्राप्त हुई। इसी कोश-संपादन कार्य पर दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र श्री महावीर जी के द्वारा आपको 11000 रुपये की सम्मान निधि प्रदान कर आपके श्रम कार्य की सराहना की गई। गणेश प्रसाद वर्णी जन्म जयंती के अवसर पर स्याद्वाद जैन महा., वाराणसी द्वारा 'वर्णी पुरस्कार से आप सम्मानित हुए तो आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज के सान्निध्य में दिल्ली में 'आचार्य कुंदकुंद पुरस्कार' (चतुर्थ) गांधी नाथारंग जी दिगम्बर जैन मंगल प्रति. सोलापुर द्वारा 51 हजार रुपये से सम्मानित हुए तथा संस्थान ने 'न्यायसिंधु' के अलंकरण से आपको विभूषित किया। श्री गोम्पटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति तथा अ.भा. पुरस्कार श्रवण बेल गोला (कर्ता.) के संस्थान से तथा जैन क्लब परिसंघ, सतना द्वारा 'जगदीश राय जैन प्रतिभा सम्मान' से भी आप अलंकृत हुए।

भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री के.आर. नारायणन ने आपकी विद्वत्ता, वाङ्मयीन अवदान तथा संस्कृत साहित्य सेवा को लक्ष्य कर 15 अगस्त 97 को 'श्रेष्ठ संस्कृत विद्वान' हेतु 20 हजार रुपये प्रतिवर्ष

प्रदान करने की घोषणा कर आपको सम्मानित किया। डॉ. कोठिया ने प्राप्त सम्मान राशि निर्धन, व्युत्पन्न प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति देने हेतु प्रदान कर दी।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि में जैन साहित्य सृजन, न्याय-दर्शन के सर्वांगीण विकास में अप्रतिम योगदान को दृष्टिगत रखकर जैन समाज के द्वारा सन् '82 में 'डॉ. दरबारीलाल कोठिया अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित कर आपको भव्य समारोह में समर्पित किया गया। आपकी रचनाधर्मिता के विविध आयामों को दृष्टिगत करके बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) के प्राकृत एवं तुलनात्मक भाषा विभाग के अन्तर्गत विगत वर्ष सन् 99 में प्रो. डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' सचिव म.प्र. संस्कृत अकादमी, भोपाल के कुशल निर्देशन में श्री महेश प्रसाद जैन, संस्कृत विभाग, हमीदिया महा., भोपाल ने 'डॉ. दरबारी लाल कोठिया की संस्कृत एवं प्राकृत रचनाओं का अनुशीलन' विषय पर 200 पृष्ठीय शोध प्रबंध लिखकर पीएचडी उपाधि प्राप्त की।

आचार्य श्री समन्नभद्र जी महाराज से वर्षों पूर्व आपने शोलापुर (महा.) के निकट वर्ती स्थान पर द्वितीय प्रतिमा के व्रतग्रहण कर संयमित जीवन जीना प्रारंभ किया था। आचार्य श्री विद्यासागर जी माहाराज से समय-समय पर दर्शन-वन्दन लाभ के अतिरिक्त समाधिमरण हेतु शरीर एवं काषायिक परिणामों को कृश/क्षीण करने हेतु मार्ग निर्देशन प्राप्त करते रहते थे। डॉ. दरबारीलाल कोठिया को जहाँ अपने चाचा पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य का समागम प्राप्त हुआ वहीं दूसरे परिजन पं. बालचंदजी सिद्धान्तशास्त्री का नैकट्य भी धार्मिक, साहित्यिक कार्य हेतु सम्बल प्रदान करता रहा।

इस प्रकार डॉ., दरबारीलाल कोठिया ने अपने जीवन के अंतिम तेरह दिनों में आचार्य प्रवर संतशिरोमणी श्री विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में परिणामों की विशुद्धतापूर्वक समाधिमरण करके जीवन को सार्थक किया।

प्राचार्य

दि. जैन आचार्य, संस्कृत महाविद्यालय,  
मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राज.)

# जैन संस्कृति में पर्यावरण-चेतना

विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सुरिदेव

‘पर्यावरण’ शब्द ‘वाता-वरण’ का ही पर्यायवाची है, जिसका सामान्य अर्थ होता है-आस-पड़ोस की परिस्थिति अथवा आसपास का परिसर। पृथ्वी, पर्वत, वायु, जंगल, पेड़-पौधे या वनस्पति, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि से मिलकर ही पर्यावरण बना है। पर्यावरण का जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है। कहना तो यह चाहिए कि पर्यावरण ही जीवन है।

जैन संस्कृति मूलतः अहिंसावादी संस्कृति है। इसलिए जैनशास्त्र में जीव-हिंसा का सर्वथा निषेध किया गया है। जैनशास्त्र में जीवों की जो योनियाँ निर्धारित हुई हैं, उनमें वनस्पति-योनि भी एक प्रमुख योनि है। ज्ञातव्य है, वैदिक या ब्राह्मण-संस्कृति में चार योनियाँ निर्धारित हैं- तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि, पितृयोनि एवं देवयोनि। किन्तु, जैन संस्कृति पितृयोनि नहीं मानती। उसकी दृष्टि में चार योनियाँ इस प्रकार हैं - वनस्पतियोनि, तिर्यग्योनि, मनुष्य योनि और देवयोनि। अपने ही कर्मों से जीवात्मा मनुष्य-योनि से च्युत होकर वनस्पति-योनि में जाती है।

वनस्पति भी जीव है, इसलिए उसे ‘वनस्पतिकायिक जीव’ कहते हैं। इसी से उसका काटना-छाँटना आदि कार्य जैन संस्कृति में वर्जित है। इस दृष्टि से जैन संस्कृति में पर्यावरण की चेतना सदा से रही है।

‘मूलाचार’ (वट्टकेर : ईसा प्रथम शती) नामक आचार-प्रधान ग्रन्थ में लिखा है कि वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है। इसकी नसें नहीं दिखाई पड़ती। यह हरितकाय है। इसे जीव-स्वरूप जानकर इसकी कृन्तन-रूप हिंसा नहीं करनी चाहिए। जैनाचार में हरितकाय पेड़-पौधों की टहनी को तोड़ना भी मना है। फलों में भी कच्चे फलों को तोड़ना मना है। जो फल पककर स्वयं गिरते हैं, वे ही ग्राह्य हैं; क्योंकि वे अचित्त (अजीव) और अनवद्य होते हैं।

वनस्पति के जीव होने के कारण ही जैनधर्म में सर्वप्रकार की कच्ची वनस्पति की अभक्ष्यता में पर्यावरण की विविध प्रदूषणों से प्ररक्षा और वनस्पतियों अथवा पेड़ पौधों की अस्तित्वरक्षा का भाव निहित है। कहना न होगा कि जैनशास्त्र या तदनुवर्ती जैनसंस्कृति में पर्यावरण के मूलभूत वन और वनस्पति के सम्बन्ध में बहुत गम्भीरता से वैचारिक विवेचन किया गया है, जो अपने आप में एक स्वतंत्र वनस्पतिशास्त्र की महिमा आयत्त करता है।

जैन चिन्तकों ने पर्यावरण की रक्षा की दृष्टि से वनस्पति को जीव मानकर उस पर दयाभाव रखने का आदेश किया है। ईसवी-सन् की तीसरी-चौथी शती के महान् कथाकार आचार्य संघदासगणी ने अपनी बहुख्यात प्राकृत-कथाकृति ‘वसुदेवहिण्डी’ के ‘बन्धु-मती लम्भ’ में लिखा है कि जैनधर्म का मूल जीवदया है। संसारी मनुष्य कन्द, मूल, फूल, फल और पत्ते के उपभोग द्वारा प्रायः वनस्पति-कायिक जीवों को कष्ट पहुँचाते हैं। आगम-प्रमाण से वनस्पतियों को जीव मानकर उन पर श्रद्धा रखनी चाहिये।

मनुष्य विषयोपलब्धि के क्रम में जिस प्रकार अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार वनस्पति-जीव भी जन्मान्तर-क्रियाओं की भावलब्धिवश अपनी स्पर्शेन्द्रिय से विषय का अनुभव करते हैं। वनस्पति-कायिक जीवों के लिये भी किसी लब्धिविशेष से विषय की उपलब्धि की बात कही जाती है। जैसे, मेघ का गर्जन सुनकर अंकुर या प्ररोह आदि का उद्गम होता है, जिससे वनस्पति-कायिक जीवों की शब्दोपलब्धि की सूचना मिलती है। आधुनिक वैज्ञानिकों की भी यह मान्यता है कि रेडियो आदि की मधुर आवाज के सुनने से फसलों को संवर्द्धन प्राप्त होता है। इससे भी वनस्पति में शब्द की उपलब्धि की शक्ति विद्यमान रहने की सूचना मिलती है। साथ ही, इससे प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु के, वनस्पतियों में भी

मनुष्य की तरह जैविक चेतना रहने के सिद्धान्त का समर्थन होता है।

और फिर वृक्ष आदि का सहारा पाकर बढ़नेवाली लता आदि को रूप की उपलब्धि होती है। इसी प्रकार, धूप देने से वनस्पति-जीव को गन्ध की उपलब्धि होती है तथा पानी पटाने से ईख आदि वनस्पति को रस की उपलब्धि होती है और प्ररोह, जड़ आदि काट देने से उत्पन्न सिकुड़न से वनस्पति की

स्पर्शोपलब्धि की सूचना मिलती है। पुनः रात्रि में कमल आदि के पत्तों या दलों के सिमटने से उनकी नींद का संकेत प्राप्त होता है और प्रातः दलों के खुलने से उनके जागने की स्थिति द्योतित होती है। और फिर, कवि-प्रसिद्धि के अनुसार, स्त्रियों के नूपुर-युक्त पैरों के आघात से अशोक आदि पेड़ों के विकसित होने की जानकारी मिलती है। और इसी प्रकार, असमय में फूल-फल के उद्गम से सप्तपर्ण वनस्पति की हर्षानुभूति का बोध होता है।

आचार्य संघदासगणी सकल वनस्पति में जीव की सिद्धि को प्रमाणित करते हुए कहते हैं- जिस प्रकार एक से अधिक इन्द्रियों वाले जीव उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं तथा खाद आदि उचित पोषण प्राप्त होने से स्निग्ध कान्तिवाले बलसम्पन्न, नीरोग एवं आयुष्यवान् (दीर्घायु) होते हैं, पुनः खाद आदि के अभाव व कुपोषण से कृश, क्षीण, दुर्बल और रूग्ण होकर मर जाते हैं, उसी प्रकार केवल एक इन्द्रिय (स्पर्शेन्द्रिय) से युक्त वनस्पति-जीवों में उत्पत्ति और वृद्धि का धर्म दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार वे वनस्पति-जीव मीठे पानी से सिक्त होने पर बहुत फल देने वाले, चिकने पत्तों से सुशोभित, सघन और दीर्घायु होते हैं। और फिर, तीते, कडुवे, कसैले तथा खट्टे-खाद जल से सींचने पर वनस्पति-जीवों के पत्ते मुरझा जाते हैं या पीले पड़ जाते हैं या रूखड़े और सिकुड़े हुये हो जाते हैं तथा फलहीन होते और अन्त में मर जाते हैं। इस प्रकार के कारणों से उनमें जीव है, ऐसा मानकर उनकी उचित रीति से सेवा और रक्षा

करनी चाहिये।

भारतीय संस्कृति में वृक्षपूजा को अतिशय महत्त्व दिया गया है। लोक-जीवन में पीपल और बरगद तो विशिष्ट रूप से पूजित हैं। विवाह-संस्कार के अवसर पर आम-महुआ ब्याहने की भी चिराचरित प्रथा मिलती है। 'धात्रीनवमी' का नामकरण उस तिथि को धात्रीवृक्ष (आँवला का पेड़) पूजने की विशेष प्रथा को संकेतित करता है, तो 'वटसावित्रीव्रत' (ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या) के दिन भारतीय सधवा स्त्रियाँ बरगद को पति का प्रतिनिधि मानकर उसकी पूजा करती हैं। वैदिक मतानुसार पीपल या अश्वत्थ तो साक्षात् त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु या कृष्ण और महेश) का ही प्रतिरूप है।

मूलतः ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।

अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः॥

यहाँ अश्वत्थ को प्रधान वृक्ष मानकर उपलक्षण रूप में अश्वत्थ का नाम लिया गया है। सभी वृक्षों की स्थिति या महिमा अश्वत्थ जैसी ही है। (विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पृ. 247)

गीता में कृष्ण ने कहा भी है कि 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्।' (10.26), अर्थात् वृक्षों में यदि कृष्ण की व्यापकता को माना जाये तो वह अश्वत्थ है। यहाँ तक कि अव्ययात्मा अश्वत्थ वृक्ष में ही समस्त संसार के आवासित रहने की भारतीय मिथक चेतना या परिकल्पना का भी अपना मूल्य है। वट-वृक्ष की पूजा से सावित्री - सत्यवान् की प्रसिद्ध पौराणिक आदर्शकथा के जुड़े रहने की बात सर्वविदित है। सोमवारी अमावस्या को अश्वत्थ-प्रदक्षिणा की लोकप्रथा भी भारतीय जीवन की धर्मनिष्ठ संस्कृति को सूचित करती है। बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञानलाभ होने के कारण बौद्धों में अश्वत्थ की पूज्यातिशयता सर्वस्वीकृत है। सिन्धु घाटी-सभ्यता में अश्वत्थ वृक्ष का महत्त्व वहाँ से प्राप्त अनेक अश्वत्थ-प्रदक्षिणा की लोकप्रथा भी भारतीय

भारतीय जीवन और संस्कृति की बृहत्कथा 'वसुदेवहिण्डी' में वृक्षों के वर्णन-क्रम में कथाकार आचार्य संघदासगणी ने अपने सूक्ष्मतम प्राकृतिक और शास्त्र-गम्भीर अध्ययन का परिचय दिया है। 'वसुदेवहिण्डी' में उपलब्ध वनों और वनस्पतियों की बहुवर्णी उद्भावनाएँ पर्यावरण-चेतना के अध्ययन की दृष्टि से अपना पार्यन्तिक महत्त्व रखती हैं। 'वसुदेवहिण्डी' में संघदासगणी द्वारा उप-न्यस्त वृक्ष-वर्णनों में वृक्षों की पूजनीयता और महत्ता का विन्यास तो हुआ ही है, पर्यावरण-चेतना भी समाहित हो गई है। कथाकार ने पर्यावरण के महत्त्व की दृष्टि से उपयोगी वृक्षों में शाल, सहकार, तिलक, कुरबक, शल्लकी, चम्पक, अशोक, कमल, कुमुद, कुन्द (गन्धर्वदत्ता लम्भ), पुन्नाग, पनस, नालिकेर, पारापत, भव्यगज, नमेरुक (वेगवती-लम्भ), सप्तवर्ण, तिन्दूसक (बालचन्द्रालम्भ), विल्व (प्रियमुसुन्दरीलम्भ), अक्षोट (अखरोट), प्रियाल (चिरौजी), कोल (बेर), तिन्दुक, इंगुद, कंसार-नीवार (केतुमती-लम्भ) आदि का उल्लेख तो किया ही है, विशेष वनस्पतियों में कल्पवृक्ष, नन्दिवत्स, चित्ररस और रक्ताशोक (चैत्यवृक्ष) का भी वर्णन किया है।

कथाकार ने कमल के फूलों, कदलीवृक्ष और कुसुमित अशोक वृक्षों का तो बार-बार चित्रण किया है, किन्तु चैत्यवृक्ष के सन्दर्भ में रक्ताशोक की अधिक चर्चा की है और इसे कल्पवृक्ष के समान कहा है। अरहस्वामी नाम के अट्टारहवें तीर्थंकर ने जब महाभिनिष्क्रमण किया था, तब उनकी शिबिका में कल्पवृक्ष के फूल सजे थे और उन पर भौरै गुंजार कर रहे थे तथा उसके गुम्बद में विद्रुम, चन्द्रकान्त, पद्मराग, अरविन्द, नीलमणि और स्फटिक जड़े हुये थे। अरहस्वामी उस शिबिका पर सवार होकर सहस्राभवन पधारे और वहाँ सहकारवृक्ष (आम्रवृक्ष) के नीचे आकर बैठे। उनके बैठते ही तत्क्षण आम्रवृक्ष रहे थे तथा उसके गुम्बद में विद्रुम,

वैज्ञानिक अध्ययन सूक्ष्मेक्षिका के साथ किया है। 'गोमटसार' (आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती : ईसा की 10वीं-शती) में वनस्पति पर विचार करते हुये आचार्य नेमिचन्द्र ने लिखा है कि वनस्पति के कई प्रकार होते हैं। जैसे, कुछ वनस्पतियाँ मूलबीजात्मक होती हैं, तो कुछ स्कन्धबीजात्मक। इसी प्रकार, कुछ वनस्पतियाँ 'बीजसह' होती हैं, तो कुछ 'सम्मूर्च्छिम'। जिन वनस्पति-जीवों का मूल ही बीज होता है, वे 'मूलबीज' कहे जाते हैं (जैसे : अदरख, हल्दी आदि)। जिन वनस्पति-जीवों का अग्रभाग ही बीज होता है, अर्थात् टहनी की कलम लगाने से वे उत्पन्न होते हैं, 'अग्रबीज' कहलाते हैं और पर्व (गाँठ या पोर) ही जिनके बीज होते हैं, 'पर्वबीज' है (जैसे : ईख, बेंत आदि)। पुनः जो वनस्पति-जीव कन्द से उत्पन्न होते हैं, वे 'कन्दबीज' माने जाते हैं (जैसे : आलू, ओल आदि)। इसी प्रकार जो वनस्पति-जीव स्कन्ध से उत्पन्न होते हैं, वे 'स्कन्ध बीज' हैं (जैसे : कटहल, धतूरा आदि) और फिर, जो वनस्पति-जीव बीज से उत्पन्न होते हैं, वे 'बीजसह' हैं (जैसे : चावल, गेहूँ, अरहर आदि)। किन्तु इन सबसे भिन्न जो वनस्पति-जीव नियत बीज आदि की अपेक्षा के बिना केवल मिट्टी और जल के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं, वे 'सम्मूर्च्छिम' कहलाते हैं (जैसे : फफूँद, काई, सेंवार आदि)।

उपर्युक्त विवरण से वनस्पति-जीव की व्यापकता की सूचना मिलती है। इसलिये, पेड़ काटने की बात तो दूर, पत्ते और टहनी तक तोड़ना भी पर्यावरण की प्ररक्षा की दृष्टि से अनुचित है, जीव-वध के समान क्रूर कार्य है। आज पत्तल और दतुवन के नाम पर पर्यावरण के प्रमुख उपकरण वनस्पति का नित्य ही महाविनाश हो रहा है। जैन चिन्तकों ने इस ओर प्रारंभ से ही ध्यान दिया है। इसीलिये उन्होंने पर्यावरण की शुद्धता के लिये अनुचित है, जो जीव-वध के समान क्रूर कार्य है। आज पत्तल और दतुवन के नाम पर



चार वृक्ष चैत्यवृक्ष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। जैनदर्शन के अन्तर्गत जीव-तत्त्व में जलकाय और वायुकाय की गणना से स्पष्ट है कि जैन चिन्तकों का ध्यान पर्यावरण के विशिष्ट तत्त्व वनस्पति के साथ ही जल और वायु की ओर भी था। वे पर्यावरण की विशुद्धि के लिये उसे जल-प्रदूषण और वायु-प्रदूषण से विमुक्त रखने के पक्षपाती थे। वायु-प्रदूषण से ही ध्वनि-प्रदूषण की भी अभिव्यंजना होती है।

इस प्रकार, पर्यावरण की रक्षा और उसकी विशुद्धि की दृष्टि से जैन संस्कृति में वन और वनस्पति के महत्त्व की विशद चर्चा मिलती है। वनस्पति, पशु-पक्षी एवं मनुष्य एक ही चेतना के रूप-भेद हैं। यहाँ तक कि समष्ट्यात्मक चेतना के रूपभेद की धारणा के आधार पर संघदासगणी ने जैनदर्शन की मान्यता के परिप्रेक्ष्य में एकेन्द्रिय जीव के शरीर-रूप वनस्पति में जीवसिद्धि का साग्रह वर्णन किया है। अतएव वनस्पति के जीव होने के कारण ही जैनधर्म में सर्वप्रकार की कच्ची वनस्पति की अभक्ष्यता में पर्यावरण की विविध प्रदूषणों से प्ररक्षा और वनस्पतियों अथवा पेड़-पौधों की अस्तित्व-रक्षा का भाव निहित है। कहना न होगा कि जैनशास्त्र या तदनुवर्ती जैन संस्कृति में पर्यावरण के मूलभूत वन और वनस्पति के संबंध में बहुत गम्भीरता से वैचारिक विवेचन किया गया है, जो अपने-आप में एक स्वतंत्र वनस्पति-शास्त्र की महिमा आयत्त करता है। इस सन्दर्भ में विशेष ज्ञातव्य के लिये 'गोम्मटसार' (नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती), 'सर्वार्थ-सिद्धि' (पूज्यपाद), 'षट्खण्डागम' (पुष्प-दन्त-भूतबलि) की 'धवला टीका' (वीर-सेन), 'राजवार्तिक' (अकलंकदेव), 'लाटी संहिता' (राजमल्ल) आदि ग्रन्थों का अनुशीलन अपेक्षित है।

अहिंसावादी जैनधर्मी श्रमणों और श्रावकों का आचरण पर्यावरण-संरक्षा के अनुकूल है, जिसके उदात्त और विस्तृत वर्णन में समग्र जैनवाङ्मय प्रखर भाव से मुखरित है, विशेषतया जैनसाहित्य और दर्शन में पर्यावरण-चेतना के चित्रण में उपस्थापित वन और वनस्पति के बहुकाशीय आयामों का समुद्भावन हुआ है।

पी.एन. सिन्हा कॉलोनी  
भिखनापहाड़ी,  
पटना- 800006

## यहाँ कुछ नहीं है अपनी इच्छा से

कुमार अनेकान्त जैन

कहाँ चल रहे हैं हम यारो, दुनिया में अपनी इच्छा से।  
करने ही पड़ते हैं कितने कर्म, यहाँ रोज अनिच्छा से॥

कब चाहे थे हमने दुःख गम, किन्तु वे मिलते कदम कदम।  
सुख नहीं है अपने वश में, वह भी चलता है स्वेच्छा से॥  
करने ही पड़ते हैं ...

थे जिसके हम अति दीवाने, वे ही थे हमसे निरे अनजाने।  
हम तिरस्कार भी सहते हैं, पर थकें न उनकी प्रतीक्षा से॥  
करने ही पड़ते हैं....

पूजा सदा उसे ही हमने जिसने धमकाया और सदा मारा।  
जो सहलाते पथ बतलाते वो मरे हमारी उपेक्षा से॥  
करने ही पड़ते हैं....

भोगों में न तर्क किया हमने न बाधाओं से घबराये।  
क्यों आत्मानुभूति का मार्ग ही पीड़ित हमारी तर्क समीक्षा से॥  
करने ही पड़ते हैं....

संसार में जी भर घूम चुके, धोखे पर धोखा भी खाया।  
पर उमड़ा नहीं फिर भी वैराग्य, भागते फिरते हैं दीक्षा से॥  
करने ही पड़ते हैं ....

व्याख्याता, जैनदर्शन विभाग, दर्शन संकाय  
लाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ  
कुतुब इन्सटीट्यूशनल एरिया, कटवारिया सराय  
नई दिल्ली-16

# वर्तमान सामाजिक असमन्वय के कारण और उनका निराकरण

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसका अस्तित्व समाज पर ही निर्भर करता है। मनुष्य के समाज बनने की प्रथम शर्त है सहयोग, जिसे समन्वय, सौहार्द और सह अस्तित्व की भावना पूर्णता प्रदान करते हैं। जिस प्रकार एक जैसे पेड़ों का समूह जंगल नहीं कहलाता, बल्कि उसमें छोटे-बड़े, कृश एवं स्थूल सभी जातियों, वर्गों एवं वर्णों वाले पेड़-पौधे सम्मिलित होते हैं,

उसी प्रकार एक जैसे, एक रंग वाले, एक ही लम्बाई - चौड़ाई एवं प्रवृत्ति वाले मनुष्यों का नाम समाज नहीं, बल्कि जहाँ सम्पूर्ण विभिन्नता के होते हुए भी परस्पर समन्वय, सहयोग एवं सह अस्तित्व की भावना के साथ मनुष्य रहते हैं, उसे समाज कहते हैं। ऐसा ही समाज गतिमय एवं प्रगतिशील कहलाता है। कहते हैं कि एक ही परिवार और रक्त समूह के लोग भी भिन्न-भिन्न प्रकृति और आदतों या तासीर वाले होते हैं। डोडे में से निकला रस, जो अफीम कहलाता है, इतना घातक और मादक होता है कि सेवन करने वालों को नाकारा सुस्त बनाता है और मौत भी ला सकता है और डोडे में से निकली खसखस (पोस्तादाना) मस्तिष्क के लिये लाभदायक होती है। इसी प्रकार समाज में भी विभिन्न वर्ण, वर्ग एवं विचारधारा के लोग होते हैं, किन्तु उनमें समन्वय हो तो वे एकरूप दिखाई देते हैं। बीसवीं सदी में सामाजिक संरचना में अनेकानेक परिवर्तन आये हैं। एक ओर समाज व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति में असफल रहा है, वहीं स्वयं की प्रधानता को बनाये रखने में अक्षम साबित हुआ है। धनाश्रयता ने समाज को पंगु बना दिया है, जिसे एक या कुछ व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये उपयोग करते हैं, दूसरी ओर व्यक्तिवाद के व्यामोह ने समाज और सामाजिकता को नकार दिया है। समाज का लघु रूप संयुक्त परिवार टूटे हैं, टूट रहे हैं, यहाँ तक कि नितान्त व्यक्तिवाद ने 'हम दो-हमारे दो' के साथ 'हम दो-हमारे दो' के भी दो यानी माता-पिता को निरीह और अकेला बना दिया है। ऐसे में समाज और सामाजिकता को बचा पाना असंभव हुआ है। आज की प्रवृत्ति पर आचार्य श्री विद्यासागर जी ने 'मूकमाटी' में लिखा है

'मैं पहले

और

समाज बाद में।'

आज समाज अपनी निष्ठा/प्रतिष्ठा खो रहा है और सामाजिक परिस्थितियाँ क्षण-प्रतिक्षण बदल रही हैं। अतः आज वहाँ समन्वय की अत्यंत आवश्यकता है, किन्तु जैसा समन्वय होना चाहिए वैसा देखने में नहीं आ रहा है, इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

जहाँ समाज और समाजवाद दोनों अपनी निष्ठा/प्रतिष्ठा खो रहे हों और सामाजिक परिस्थितियाँ क्षण-प्रतिक्षण बदल रही हों, वहाँ समन्वय की अत्यंत आवश्यकता है। किन्तु जैसा समन्वय होना चाहिए वैसा देखने में नहीं आ रहा है। इसके कारण क्या हैं और उनका निराकरण क्या है, इसका सूक्ष्म और गहन अन्वेषण विद्वान् लेखक और 'जिनभाषित' के सहयोगी सम्पादक डॉ. 'भारती' ने किया है।

वर्णव्यवस्था का जातीयकरण

भगवान ऋषभदेव द्वारा वर्ण व्यवस्था की कर्मानुसार संरचना करके क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की स्थापना हुई थी जिसमें संशोधन कर महाराज भरत ने ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि की, किन्तु यह कर्मानुसार ही थी। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के अनुसार - कम्मुणा बम्हणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।

कम्मुणा वेस्सयो होई, कम्मुणा होई सूह्यो।।

अर्थात् कर्म से व्यक्ति ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से शूद्र होता है।

जब तक यह व्यवस्था चलती रही सामाजिक समन्वय भी चलता रहा, किन्तु जब वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म न होकर जन्म हो गया तो जातिवाद का विकास हुआ। हर एक जाति दूसरी जाति को छोटा-बड़ा मानने लगी। नृत्वशास्त्रियों का मत है कि भारत में अनेक जातियाँ हैं और उनकी विशेषता यह है कि उनमें से हर जाति दूसरे को निम्न समझती है। कालान्तर में जातीय श्रेष्ठता ने सामाजिक समन्वय को क्षति पहुँचायी और दस्सा, बीसा, परवार, गोलापूर्व, खण्डेलवाल, बघेरवाल, जैसवाल, हूमड़, पद्मावती पोरवाल आदि उपजातियों को बल मिला और फिर पिण्डशुद्धि के नाम पर जो जातियों का ध्रुवीकरण हुआ उसने समाज में कटुता को वृद्धिगत किया तथा एक-दूसरे को निम्न समझने की भावना पनपी और एक संकुल वाला समाज अनेक हिस्सों में बँट गया।

आर्थिक पक्ष पर बल

किसी भी स्वस्थ समाज के लिए धनसम्पन्नता बुरी नहीं मानी जाती, किन्तु जब यही धन नीति और नियन्ता का आधार बनकर 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रमयन्ते' की शैली अख्तिवार कर ले तो समन्वय कैसे रह सकेगा? आज सभी पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सवों, महामस्तकाभिषेकों आदि में धन - सम्पन्न लोग ही उच्च पद एवं सम्मान प्राप्त करते हैं, वहीं जिनके पास धनसम्पन्नता नहीं है, वे हीन भावना से ग्रस्त हो मात्र दर्शक बन जाते हैं फलतः अमीर और गरीब वर्ग बन गये हैं। अब खोटा कर्म करने वाला और छोटे तरीकों से धनोपार्जन करने वाला श्रावक-शिरोमणि, भगवान के माता-पिता, चक्रवर्ती, इन्द्र बन सकता है, वहीं प्रतिदिन भगवान की पूजा-अर्चना करने वाला पुजारी हीन दृष्टि से देखा जाता है। अतः सामाजिक समन्वय में कमी आयी है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में कहा गया है -

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूतमा।  
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

इसमें कहीं भी धन की वन्दना नहीं है, किन्तु आज समाज में गुणों की अनदेखी कर पद, पैसा और पावर (शक्ति) को बढ़ावा दिया जा रहा है। निस्सन्देह इस स्थिति ने सामाजिक समन्वय को नष्ट किया है। इस उपेक्षित वर्ग की समाज में कोई आस्था नहीं रही। कहाँ हरसुख-राय जैसे निस्पृह दानी, जो मंदिर निर्माण में आम आदमी की भागीदारी एवं भावना सुनिश्चित करना चाहते हैं और कहाँ आज के मन्दिर-निर्माता जो फर्श से लेकर शिखर तक अपना ही अपना नाम चाहते हैं। अर्थ की प्रभुता के अनर्थ ने आम और खास के बीच जो दूरी बढ़ायी है उससे समन्वय का मार्ग अवरुद्ध हुआ है।

### मन्दिरों की भूमिका में बदलाव

मन्दिर समाज के प्राण हैं जहाँ से सहयोग की प्राणवायु प्राप्त कर समाज गतिशील होता है। मन्दिर में पहुँचकर आमजन सामाजिक बनते हैं, वे एक पंक्ति में बैठते हैं, उनके आसन समान होते हैं, सभी धार्मिक कृत्य करते हैं, धर्मलाभ लेते हैं और स्वयं को समाज का अभिन्न अंग मानते हैं। पूर्व में समाज व्यवस्था के तीन अनिवार्य अंग थे- (1) मन्दिर (2) औषधालय और (3) विद्यालय। एक ओर इनसे समाज बल प्राप्त करता है, द्वितीय दान के प्रमुख क्षेत्रों के प्रति समाज अपना दायित्व समझता था, किन्तु जबसे व्यापारिक वर्ग का प्रबन्धक वर्ग में समायोजन हुआ है, ये तीनों क्षेत्र व्यापारिक दृष्टि से देखे जाने लगे और लाभ-हानि के गणित में लाभ की सही परिभाषा न करने, उसे अर्थ मात्र से तौलने के कारण पाठशालायें, औषधालय बन्द किये गये। आज भी जहाँ पाठशालायें संचालित हैं वहाँ गुरुजनों का वेतन 120 रुपये प्रतिमाह से 500 रुपये के बीच ही है। अब बचे मंदिर, उन्हें भी व्यावसायिक काम्प्लेक्स में बदलने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी गयी। अब वहाँ धर्म का वातावरण कम, धन का वातावरण अधिक बलवान है। मन्दिरों के अग्रभाग में दुकानें और पश्चिम भाग में बारतें ठहराने की व्यवस्था, स्थान-स्थान पर दानपेटियाँ, दान दाताओं की पट्टावलियाँ, पंखे से लेकर थाली तक नाम ही नाम ने धर्मकार्य को पुरुषार्थ नहीं रहने दिया है।

मुझे यह लिखते हुए अत्यंत दुःख हो रहा है कि एक स्थान की धर्मशाला में एक विशाल आर्थिका संघ विराजमान था और वही समय विवाहों का था। उसके अध्यक्ष निरन्तर इस प्रयास एवं कयास में रहते कि कब आर्थिका संघ जाये। वे निरन्तर कहते कि धर्मशाला की आय का नुकसान हो रहा है। आखिर मैं इसलिए तो अध्यक्ष नहीं बना कि धर्मशाला की आय कम करूँ? वे दिखाने के लिए तीनों टाइम माताजी की वन्दना करते, प्रवचन सुनते और मन ही मन कहते-मेरी धर्मशाला कब खाली होगी? जब धर्मी जनों के प्रति समाज के नेतृत्व का यह सोच होगा तो समाज के प्रति वे कितने उत्तरदायी होंगे और कितना समन्वय कर सकेंगे? पहले मंदिरों में एकत्रित जनसमुदाय से सामाजिक संगठन को बल मिलता था, सार्वजनिक उत्सवों/समारोहों/मेलों में आदर्श स्थितियाँ बनती थीं आज खेमेबाजी को बढ़ावा मिलता है, कषायों की उद्भावना होती है, मनमुटाव बैर का रूप धारण करता है, पद प्राप्ति के लिये चुनाव होते हैं, 'अहिंसा परमोधर्मः' के स्वर 'हिंसा परमोधर्मः' में बदल जाते हैं और हम 'सब चलता है' कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं। इन कारणों की भयावहता से युवावर्ग एवं सरल परिणामी श्रावक जैनमंदिरों से विमुख होने लगे हैं। परिणामतः मन्दिरों

के घंटों की ध्वनियाँ शून्य में चीत्कार करने के साथ ही अस्तित्ववान हैं। अब मंदिर जाना, पूजा करना, मुनियों की वैयावृत्ति करना सब ढोंग कहे जाने लगे हैं, जबकि मंदिर व्यक्ति की दशा एवं दिशा बदलने में समर्थ कहे जाते हैं। मन्दिरों की भूमिका में आया यह बदलाव सामाजिक समन्वय को क्षति पहुँचाने में स्वाभाविक रूप से कारण बना है।

### भौतिकवाद में बढ़ता विश्वास

पाश्चात्य प्रभाव के कारण हमारे भौतिक सोच में बेतहाशा वृद्धि हुई है, जिसमें हर वस्तु और हर व्यक्ति उपभोग्य बन गया है। मानवीयता का पक्ष दकियानूसी और चहुँओर संचय करने, यहाँ तक कि हिंसक प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति बढ़ रही है। 'मेरा पेट हाऊ, मैं न जानूँ काऊ' के पक्षधर जन अपने घरों को उन चीजों से पाटते जा रहे हैं जो आवश्यक की श्रेणी में न आकर विलासिता की श्रेणी में आती हैं। बढ़ते भौतिकवाद ने आदमी की क्षमताओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। यहाँ तक कि अब शुद्धता भी रेडीमेड हो गयी है। एक ओर धनवर्षा हो रही है तो दूसरी ओर 'चन्द्रबली' सब्जी नहीं खा सकने की स्थिति के कारण आत्महत्या कर रहा है। एक सौ रुपये की शर्त जीतने के लिए एक अभाग्य मौत का साधन जानते हुए भी एक किलो नमक को घोल कर पी लेता है और मर जाता है। वहीं दूसरी ओर हमने मंदिरों की सादगी छीनकर परिणामों की सादगी पर डाका डाला है अतः हमारे धर्मायतन और सामाजिक सम्बन्ध भी भौतिकवाद की चपेट में आ गये हैं। जहाँ एक ओर मन्दिरों के पुजारी, मैनेजर, मुनीम कम वेतन पाकर रोते हैं, वहीं समाज के चन्द कर्णधार अपनी सुविधाओं के लिए हीटर, कूलर, गीजर एवं अन्य डीलक्स सुविधाएँ जुटा रहे हैं। तीर्थस्थान पिकनिक स्पॉट, हनीमून, मौजमस्ती, अय्याशी एवं रिसोर्ट संस्कृति के अंग बन रहे हैं। सामाजिक सम्बन्धों का आधार भौतिक सम्पन्नता बन गयी है, जिसने सम्बन्धों को भावनात्मक धरातल से हटाकर भौतिकता की जड़ता में जड़ दिया है और हमारे समाज की समन्वयवादिता को वर्गविशेष से सम्बद्ध कर दिया है जिसमें 'आप' है किन्तु 'हम' गायब है।

### टी.वी., सिनेमा एवं संचार साधनों का प्रभाव

व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करना साम्राज्यवादी शक्तियों की गहरी चाल होती है। टी.वी. संस्कृति ने इसी व्यक्तिवादी सोच को विकसित किया है। 18 से 24 घंटे तक टी.वी. के विभिन्न चैनल्स पर प्रसारित भावनात्मक, उत्तेजक, रोमांटिक गीत-संगीत एवं हिंसा प्रधान धारावाहिकों ने व्यक्ति को व्यक्ति से काटकर रख दिया है। दिनभर टी.वी. के सामने बैठे दर्शक व्यक्तिवादी धारा में इस कदर बह जाते हैं कि सामाजिक परिवेश उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं होता। सिनेमा के थोथे डायलॉग्स सम्बन्धों की प्रगाढ़ता एवं भावनात्मकता को तार-तार कर व्यक्ति सुख को सर्वोपरि बनाते हैं। संचार के बढ़ते साधन यथा-टेलीफोन, फैक्स, सेल्यूलर फोन, पेजर, इंटरनेट के माध्यम बातचीत को अर्थ (कैश) में भुनाते हैं तथा जितनी अधिक बात उतने अधिक दाम, जितनी कम बातें उतने कम दाम की मानसिकता को पुष्ट कर संवादहीनता की स्थिति निर्मित करते हैं। फलतः प्रत्यक्ष साक्षात्कार का अभाव एवं संवादहीनता के परिणाम स्वरूप सामाजिक समन्वय का अभाव बढ़ा है।

## समाज संस्था की दायित्व हीनता

व्यक्ति के समग्र विकास का दायित्व समाज पर होता है लेकिन जब वही समाज कानून, धर्म, जाति, धन, परम्परा, अकर्मण्यता एवं स्वार्थ के आगे विवश हो जाये, तो समाज के प्रति आम जन की निष्ठा खण्डित होती है। आज समाज में अशिक्षा व्याप्त है, शिक्षित बेरोजगार हैं, विद्यालयों की कमी है, ग्रामीणों के पास मूलभूत सुविधाओं का अभाव है, दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों के कारण अनेक लड़कियाँ या तो बेमेल विवाह के अभिशाप को जीवन भर भोगती हैं या सास, ससुर, ननद आदि की मानसिक एवं शारीरिक प्रताड़ना को सहती हैं। पुरावैभव के प्रतीक मन्दिरों/तीर्थों की जर्जरतावस्था, अनैतिकता का बोलबाला तथा धन सम्पन्नों की स्वार्थान्धता के आगे विवश, बलात्कृत जन जब निराकरण हेतु समाजाभिमुख होता है और समाज की उपेक्षा एवं दायित्वहीनता की स्थिति पाता है, तो वह समाज को ही नकारने लगता है। यह स्थिति ठीक वैसी है जैसे कि -

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता।  
हम घर में भटके हैं अपने कैसे ठौर-ठिकाने आवेंगे।।

## जैन शिक्षा का दुर्बल आर्थिक पक्ष

वर्तमान युग धन का युग है। एक कथन है कि जिनके हाथों में अर्थशास्त्र (धन की महत्ता) की पुस्तक होती है वे धर्मशास्त्र नहीं समझते। एक ओर बिडम्बना है कि जैन शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है, दूसरी ओर जिन्होंने जैन शिक्षा प्राप्त की है वे उसके आधार पर भरणपोषण नहीं कर सकते। जो समाज अपने ही व्यक्ति को अपने ही धर्म का विशेष ज्ञान प्राप्त होने पर रोजगार नहीं दे सकता, वह व्यक्ति भी उस समाज के साथ उस सीमा तक तालमेल नहीं रख पाता, जितना कि होना चाहिए। आज जैनदर्शन में स्वर्णपदक प्राप्त आचार्य-उपाधिधारी व्यक्ति भी नौकरी के लिए समाज से कोई सहयोग प्राप्त नहीं करता तथा इन्हीं उपाधियों के सहारे वह अन्य शासकीय सेवाओं में भी नहीं जा सकता। ये स्थितियाँ व्यक्ति को समाज से सम्बद्ध नहीं रहने देतीं। समाज जैन विद्वानों की जो उपेक्षा करता है, उसे देखकर कई शिक्षित जन दर्द के साथ कहते हैं कि 'यह तो अच्छा है कि हमें समाज की गुलामी नहीं करनी पड़ रही है।' जहाँ अपने ही समाज का कर्णधार गुलाम की स्थिति में हो, वहाँ सामाजिक प्रतिबद्धता कैसे सुनिश्चित की जा सकती है?

## नारियों में धार्मिक शिक्षा का अभाव

किसी भी समाज का आधारभूत ढाँचा महिलाओं पर निर्भर रहता है, किन्तु हमारे समाज की महिलाओं में धार्मिक शिक्षा का अभाव है। एक ओर धार्मिक शिक्षा का अभाव दूसरी ओर धर्म के प्रति परम श्रद्धाभाव उनमें है, किन्तु मैंने स्वयं ऐसा अनुभव किया है कि उन्हें धार्मिक अशिक्षा के कारण कई बार कपटपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ता है। धार्मिक अनुष्ठान, सिद्धि, तंत्र-मंत्र, आशीर्वाद के लालच में वे वह सब करने पर विवश हो जाती हैं, जिसे धार्मिक ठगी या शोषण कह सकते हैं। आज अनेक संघों के संचालकों में मात्र युवा महिलाओं का होना एक नहीं अनेक प्रश्नों को जन्म देता है, जिससे समन्वय का मार्ग दूषित ही होता है।

## पाठशालाओं का अभाव

प्राचीन समय में गुरुकुल सामाजिक, सांस्कृतिक केन्द्र के रूप

में कार्य करते थे। आज से बीस वर्ष पूर्व तक सामाजिक पाठशालाओं का प्रचलन रहा, जिसके कारण सामाजिक प्रतिबद्धता, धार्मिक ज्ञान एवं समन्वय की धारा निरन्तर चलती रही। आज पाठशालाओं के अभाव के कारण संस्कारों की कमी आयी है और प्रारंभिक समन्वय, सहयोग और अपनत्व की घुट्टी अब प्रारंभ में नहीं मिलती जो दीर्घ जीवन में समन्वय का आधार बनती है।

## दूषित खानपान

सम्पूर्ण देश आज खानपान की दूषितता के बढ़ते प्रभाव से आक्रान्त है। परम्परागत रसोई घरों की पहचान अब साधुओं के चौकों के अवसर पर ही दिखाई देती है। चप्पल संस्कृति का रसोई घर में प्रवेश, रेडीमेड अमर्यादित भोज्य पदार्थों का घर में आना, स्वाद की लोलुपता और आहारदान के प्रति घटती आस्था इन सबने सामाजिक समन्वय को खण्डित किया है। आज हमारे सामाजिक समन्वय का भोज्य आधार चाय है जिसमें दूध कम पानी ज्यादा है अतः ठोस आधार के बिना समन्वय का विराट आधार कैसे तैयार किया जा सकता है?

## पंच कल्याणक, गजरथों की बदलती भूमिकाएँ

पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव, उत्सव कम रह गये हैं जबकि अधिक हो रहे हैं। पूर्व में कहीं सुनते थे कि पंचकल्याणक है तो लोग खान-पान का सामान एवं बिस्तर बाँधकर बड़े उत्साह से चले आते थे, किन्तु आज जबकि इनका व्यक्तिवादी रूप पूरी तरह समाज में बदला है, क्योंकि अब ये महोत्सव सम्पूर्ण समाज के पैसों से होते हैं, समाज निष्ठा एवं जागृति को उपस्थित नहीं करते। ये आयोजन धार्मिक कम तमाशाई आधिक हो गये हैं। परिणामतः पंचकल्याणक को लोग पंचों के कल्याणक, गजरथ को मानरथ से अभिहित करने लगे हैं। इनसे धर्म दूर हुआ है। राजनेताओं के भाषण, श्रृंगारिक उत्तेजक कवि सम्मेलन, अशुचिता का सर्वत्र योग, मूर्तियों में बढ़ोत्तरी एवं पंचदिवसीय सामाजिक धन का लाखों करोड़ों में अपव्यय, धनप्राप्ति हेतु बोलियों, लाटरियों का प्रयोग, पक्षपात, आदि ने इन आयोजनों के प्रति आम समाज की निष्ठा एवं समन्वय को तोड़ा है। मेरा विश्वास है कि यदि एक वर्ष के लिये पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव बन्द कर दिये जायें तो समाज में सौ डिग्री कालेज संचालित किये जा सकते हैं, हजारों असहायों को रोजागार के साधन प्रदान किये जा सकते हैं। इससे जो विराट समन्वय का मार्ग बनेगा, वह गजरथ फेरी की पग डण्डियों से अधिक मजबूत होगा।

## स्वाध्याय एवं समय का अभाव

स्वाध्याय की प्रवृत्ति की समाप्ति के कारण सामाजिक दायित्व एवं धर्म को समझने का मार्ग लगभग बन्द हो गया है। जिन पुराणों के आख्यानों से व्यक्ति प्रभावित होकर सामाजिक बनता था उनसे अब परिचय ही नहीं होता। यही कारण है कि अब हिंसा, अहिंसा के बीच की विभाजक रेखा टूटी है। बढ़ती व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा एवं बढ़ती आर्थिक माँगों के कारण समयाभाव की परिस्थितियाँ सर्वत्र हैं जिससे व्यक्ति का सामाजिक जुड़ाव कम हुआ है। अब समन्वय की मात्र लिफापाई संस्कृति चल रही है, जिसमें क्या भेजा और किसने भेजा मात्र सूची तक ही सीमित हो गये हैं, समन्वय की आत्मीयता इसमें कहाँ?

## सामाजिक असमन्वय के धार्मिक कारण

धर्म किसी भी समाज के नियंत्रण का अचूक माध्यम होता है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में बढ़ते विवादों ने धर्म के साथ समाज को भी विवादित बनाया है। पूजा पद्धतियों में अन्तर, तेरापंथ, बीसपंथ, साढ़े सोलह पंथ, शुद्धाम्नाय, निश्चय-व्यवहार, निमित्त उपादान, क्रमबद्ध पर्याय, मूर्तिपूजा, तारणपंथ, कहानपंथ, सोनगढ़ी, जयपुरी-देवगढ़ी, पीठाधीश परम्परा के रूप में साधुओं का असंयमित व्यवहार, आर्थिकों के चरण चिन्हों की नवीन सर्जना, प्रथमाचार्य-विवाद, ब्रह्मचारिणियों की पूज्यता-वन्दना, बढ़ते मंदिर, घटते पुजारी आदि धार्मिक विवादों ने समाज के अनेक वर्ग बना दिये हैं। अब तो दिगम्बर साधुओं के नाम पर भी खेमेबाजी है। साधुओं में असंयम को तर्क संगत बताया और माना जाने लगा है जिससे समाज में समन्वय कम विद्वेष और अलगाव तथा किंकर्तव्यमूढ़ता की स्थिति निर्मित हुई है।

एकान्तवादी सोच के विकसित होने से मनमानापन समाज एवं व्यक्ति के स्तर पर बढ़ा है परिणामस्वरूप माँ-बाप, भाई-भाई एक दूसरे के वैचारिक दुश्मन बन गये हैं, जिनके कारण घर एवं समाज का वातावरण कलुषित हुआ है। न लोग निश्चय को समझ रहे हैं न व्यवहार को बल्कि निश्चय नय के नाम पर व्यवहार एवं निश्चय दोनों को गड़बड़ा दिया है। वास्तव में एकान्तवाद एक विष की तरह है जिससे व्यक्ति करे भले ही नहीं, किन्तु फोड़े फुन्सियों की उत्पत्ति और बहते मवाद की दुर्गन्ध सहने से बच नहीं सकता।

### निराकरण के उपाय

इस सामाजिक असमन्वय के निराकरण हेतु निम्न उपाय अपेक्षित हैं-

1. समाज को घटकों में बाँटकर देखने के स्थान पर विराट समाज के रूप में देखा जाए।
2. समाज में असहायों, अशिक्षितों के उद्धार हेतु सामाजिक मंच एवं आर्थिक कोष बनें।
3. समाज में धन की श्रेष्ठता के स्थान पर गुणात्मक श्रेष्ठता पर

बल दिया जाए।

4. साधु एवं श्रावक स्वयं अपने शिथिलाचार को समाप्त करने हेतु सजग हो।
5. धार्मिक क्षेत्र में आगम की मान्यताओं का ध्यान रखा जाए।
6. समाज में धार्मिक-नैतिक एवं लौकिक शिक्षा के लिए समाज द्वारा शिक्षालय स्थापित किये जायें।
7. समाज के उद्योगपति, प्रबन्धक अपने संस्थानों में समाज के ही व्यक्तियों की प्राथमिक अनिवार्यता के साथ नियुक्तियाँ करें।
8. सामाजिक विवादों को निपटाने हेतु स्थानीय स्तर पर 'सामाजिक विवाद निवारण प्रकोष्ठ' बने।
9. सामाजिक प्रतिबद्धता के विकास हेतु पूजन शिविर, श्रावक शिविर एवं सहयोग शिविर आयोजित किये जायें।
10. समाज में निर्धनवर्ग की पहचानकर उनके विकास/उत्थान की दसवर्षीय योजनाएँ संचालित की जायें।
11. साधुओं की भूमिका समाजोन्मुखी एवं दीर्घकालिक हो।
12. दान का रूप प्रचलित हो उसे बोली का रूप न दिया जाय।
13. मन्दिरों के सामानों पर दानदाताओं के नाम अंकित नहीं किये जायें।
14. सामाजिक सहयोगात्मक गतिविधियों में बढ़ोत्तरी हो।
15. धार्मिक विवादों को निबटाने के लिये शीघ्र पहल की जाये।
16. एकान्तवादी विचारधारा के स्थान पर अनेकान्तवादी विचारधारा को प्रोत्साहित कर दूसरों के विचारों का आदर किया जाए।
17. समाज में नियमित स्वाध्याय एवं वैचारिक संवाद के आयोजन किये जायें, ताकि वैचारिक मानस उच्चता को प्राप्त हो।
18. समाज में साधु, विद्वान और श्रावकों की भूमिका बनी रहे। एक दूसरे को काटने की प्रवृत्ति न हो, ताकि इन तीनों के महत् योगदान से सामाजिक समन्वय की धारा अविरल बहती रहे।

एल-65, न्यू इंदिरा नगर-ए,  
बुरहानपुर, म.प्र.

## डॉ. रमेशचन्द्र जैन की कृतियों का विमोचन

दादाबाड़ी- कोटा (राज.) में दि. 2 नव. को परमपूज्य मुनि श्री सुधासागर जी, क्षु. श्री गम्भीर सागर जी एवं क्षु. श्री धैर्यसागर जी के सान्निध्य में भगवान महावीर स्वामी के 2600 वें जन्म कल्याणक वर्ष एवं विद्वत्परिषद् की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में प्रकाशित अनेकान्त मनीषी डॉ. रमेशचन्द्र जैन डी.लिट. (बिजनौर), अध्यक्ष - अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् द्वारा लिखित 'जैनपर्व' एवं 'उद्बोधन' कृतियों का विमोचन श्री मनीष कुमार जैन, आशिष मेडिकल स्टोर्स, लाड़पुरा, कोटा ने किया। उन्होंने 11000/- रुपये प्रदान कर 'जैनपर्व' कृति भेंट स्वरूप समाज में साधुसंतों को प्रदान करने की घोषणा की। पू. मुनि श्री ने लेखक एवं विमोचन कर्ता को धर्मवृद्धि हेतु आशीर्वाद प्रदान किया।

### 'परमसुधासागर' का प्रकाशन

दादाबाड़ी- कोटा (राज.)। धर्म दिवाकर पं. लाल चन्द्र जैन 'राकेश' (गंजबासौदा) द्वारा विरचित मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के जीवन चरित पर आधारित कृति संगोष्ठी में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत की गयी, जिसे प्रा. अरुण कुमार जैन (निदेशक-आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर) ने प्रकाशन हेतु स्वीकार किया। कोटा समाज के विशेष आग्रह पर यह कृति श्री ऋषभ मोहिवाल, मनीष मोहिवाल, राजु मोहिवाल, अमित मोहिवाल एवं परिवार कोटा (राज.) द्वारा प्रकाशित की जायेगी।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन,  
एल-65, न्यू इंदिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

# शंका-समाधान

पं. रतनलाल बैनाडा

**शंकाकार - ब्र. अरुण मथुरा**

**शंका -** भगवान् पुष्पदन्त से लेकर भगवान् धर्मनाथ तक 7 तीर्थों में धर्म की व्युच्छिति हुई थी। यहाँ धर्म की व्युच्छिति से क्या तात्पर्य है?

**समाधान -** श्री तिलोय पण्णत्ति अ. 4/1291 में इस प्रकार कहा है-

**हुंडावसप्पिणिसस य, दोसेणं वेत्ति सोत्ति विच्छेदे।**

**दिक्खाहि मुहाभावे, अत्यमिदो धम्य-वर-दीओ॥1291॥**

**अर्थ-** हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से, वक्ताओं और श्रोताओं का विच्छेद होने के कारण तथा दीक्षा के अभिमुख होने वालों के अभाव में धर्म रूपी उत्तमदीपक अस्तमित हो गया था।

श्री त्रिलोकसार गाथा - 814 की टीका में इस प्रकार कहा है-

**वक्तृश्रोतृचरिष्णूनामभावात् सद्धर्मो नास्ति॥814॥**

**अर्थ-** वक्ता, श्रोता और धर्माचरण करने वालों का अभाव होने से सद्धर्म अर्थात् जैन धर्म का विच्छेद रहा है।

श्री सिद्धान्तसार दीपक 9/169-172 के अनुसार भी धर्म उच्छेदकाल में मुनि, श्रावक, वक्ता, श्रोता नहीं होते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि जिस काल में वक्ता, श्रोता तथा मुनि, श्रावक न हों, उस काल को धर्म व्युच्छिति काल कहते हैं।

**शंका -** श्रीकृष्ण को तीर्थंकर प्रकृति का बंध किस कारण हुआ?

**समाधान -** श्री वसुनन्दीश्रावकाचार गाथा नं. 349 में इस प्रकार कहा है -

**वारवईए विज्जाविच्चं किच्चा असंजदेणावि।**

**तित्थयरणापुण्णं समज्जियं वासुदेवेण॥349॥**

**अर्थ-** द्वारावती में व्रत, संयम से रहित असंयत भी वासुदेव श्रीकृष्ण ने वैयावृत्य करके तीर्थंकर नामक पुण्यप्रकृति का उपार्जन किया।

श्री धर्मसंग्रह श्रावकाचार श्लोक नं. 106 में कहा है -

**द्वारावत्यां मुनीन्द्राय ददौ विष्णुः सदौषधम्।**

**तत्पुण्यतीर्थकृन्नाम सद्गोत्रेण बबन्ध सः॥106॥**

**अर्थ-** द्वारका नगरी में किसी मुनिराज के लिए विष्णु (श्रीकृष्ण) ने उत्तम औषध दान दिया था, उस दान के पुण्य से उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध किया।

**शंका -** वर्तमान अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम मोक्षगामी अनन्तवीर्य महाराज के पूर्वभव बताइये?

**समाधान -** अनन्तवीर्य महाराज पूर्व के नौवें भव में हस्तिनापुर नगर में सागरदत्त वैश्य से उसकी धनवती नामक स्त्री से उग्रसेन नामक पुत्र हुआ। वह स्वभाव से अत्यधिक क्रोधी था। एक दिन उसने राजा के भण्डार की रक्षा करने वाले लोगों को डरा धमकाकर बलपूर्वक बहुत सा घी और चावल निकालकर वेश्याओं को दे दिया। जब राजा

28 दिसम्बर 2001 जिनभाषित

ने यह सुना तब उसने उग्रसेन की बहुत मारपीट की, जिससे वह तीव्र वेदना सहकर मरा और व्याघ्र हुआ। जब भगवान् आदिनाथ का जीव राजा बज्रजंघ की पर्याय में था तब उसने चारणऋद्धिधारी मुनि को आहार दिया था। तब यह व्याघ्र भी वहाँ दान की अनुमोदना कर रहा था। जिस कारण सातवें भव में उत्तर कुरु भोगभूमि में मनुष्य हुआ। वहाँ से छठे भव में ऐशान स्वर्ग में चित्रांगद नामक देव हुआ। वहाँ से चयकर विभीषण राजा और प्रियदत्ता रानी का वरदत्त नामक पुत्र हुआ। वरदत्त एक बार विमलवाह जिनेन्द्र की वन्दना करने गये और विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली। समाधिमरण पूर्वक शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हुए। वहाँ से चयकर तीसरे भव में राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता के विजय नामक पुत्र हुए। दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहिमिन्द्र हुए। वहाँ 33 सागर तक स्वर्गसुख भोगकर भरतचक्रवर्ती के अनन्तवीर्य नामक पुत्र हुए। इन्होंने भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में दिव्यध्वनि सुनकर दीक्षा प्राप्त की और इस अवसर्पिणी युग में सर्वप्रथम मोक्ष प्राप्त किया।

**शंका -** अणुव्रत-महाव्रत आदि क्षायोपशमिक भाव बंध के कारण है या नहीं?

**समाधान -** वर्तमान में कुछ लोग दान, पूजा, व्रत आदि की क्रिया परिणतिरूप शुभोपयोग को औदयिक भाव मानकर बंध का हेतु मानते हैं, जो वास्तव में आगम विरुद्ध है। क्योंकि अनेक आचार्यों ने इनको क्षायोपशमिक भाव तथा निर्जरा का कारण मानते हुए परम्परा से मोक्ष का कारण माना है।

प्रवचनसार गाथा 157 की टीका में आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी कहते हैं-

‘विशिष्टक्षयोपशमदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुदगलानुवृत्ति परत्वेन परिगृहीतशोभनोपरागत्वात् परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वराहत् सिद्धसाधुश्रद्धाने समस्तभूतग्रामानुकम्पाचरणेच प्रवृत्त शुभोपयोगः।’

**अर्थ-** दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीय के विशिष्ट क्षयोपशम से परम भट्टारक महादेवाधिदेव, अरहंत, सिद्ध और साधु की श्रद्धा करने से एवं समस्त जीवों पर अनुकम्पा करने से शुभोपयोग होता है। (यहाँ जीवों पर अनुकम्पा करने से दया, दान, व्रत आदि परिणामों को लिया गया है) आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने शुभोपयोग को क्षायोपशमिक भाव बताया है। और जैनागम में शुभोपयोग को संसार का कारण न मानकर परम्परा से मोक्ष का कारण माना है।

जैसा कि समयसार की तात्पर्यवृत्ति टीका में कहते हैं -

**मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकक्षायिकाः त्रिधः।**

**बंधमौदयिकभावो, निष्क्रियः पारिणामिकः॥378॥**

**अर्थ-** क्षयोपशम, उपशम एवं क्षायिक भाव मोक्ष के करने वाले हैं, और औदयिक भाव बंध का कारण है, तथा पारिणामिक भाव निष्क्रिय है। उपर्युक्त प्रमाण से यह भली प्रकार सिद्ध है कि दान, व्रत, दया आदि शुभ भाव क्षायोपशमिक भाव हैं और मोक्ष के



कारण हैं।

प्रवचनसार गाथा 254 में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ऐसा कह रहे हैं-

एसा पसत्थभूदा, समणाणं व पुणो धरत्थाणं।

चरिया परेत्ति भणिदा, ता एव परं लहदि सोक्खं॥254॥

अर्थ- शुभोपयोग रूप प्रशस्तचर्या गृहस्थों की मुख्य और साधुओं की गौण कही गयी है। इसी शुभोपयोग के द्वारा गृहस्थ परम्परा से परम सुख को प्राप्त करता है।

श्री धवल जी में कहते हैं (पु. 8/83)-

असंख्वेज्ज गुणाये सेणिए कम्म णिज्जरं हेदु वदं णाम।

अर्थ- असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा होने के कारण निश्चय से व्रत ही है। अणुव्रत और महाव्रतों को आचार्य उमास्वामीजी ने संयतासंयत एवं क्षायोपशमिक चारित्र क्षयोपशम भाव के अन्तर्गत लिया है। (तत्त्वार्थ सूत्र 2/5) क्योंकि उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण होते हैं अतः अणुव्रत और महाव्रतों को कभी भी बंध का कारण नहीं कहा जा सकता है।

संवर का वर्णन करते हुए आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है- 'स गुप्तिसमितिधर्मानुपेक्षापरीषहजयचारित्रैः।

अर्थ- गुप्ति, समिति, धर्म, अनुपेक्षा, परीषहजय और चारित्र ये संवर के कारण हैं।

मोक्षमार्गप्रकाशक में पंडित टोडरमल जी लिखते हैं - "देखो चतुर्थ गुणस्थान वाला शास्त्राभ्यास, आत्मचिन्तन आदिक कार्य करे तहाँ भी निर्जरा नहीं, बंध भी घना ही है। अर पंचम गुणस्थान वाला विषय सेवन आदि कार्य करे, तहाँ भी बाके गुणश्रेणी निर्जरा हुआ करे बंध भी थोरा होवे। बहुरि पंचमगुणस्थान वाला उपवास आदि व प्रायश्चित आदि तप करे तिस काल भी बाके निर्जरा थोरी। अर छठागुणस्थानवाला आहार बिहार आदि क्रिया करे तिस काल बाके निर्जरा घनी वा बंध भी बाके कम होवे।" यहाँ विचारणीय यह है कि चतुर्थ गुणस्थानवाले के आत्मचिन्तन करने पर भी निर्जरा नहीं कही है, बंध भी बहुत कहा है और पंचम गुणस्थानवर्ती के विषयसेवनादि कार्य करते हुए भी गुणश्रेणी निर्जरा कही है, बंध भी थोड़ा कहा है, जिसका कारण अणुव्रत अर्थात् देशचारित्र के अलावा और क्या हो सकता है? अणुव्रत और महाव्रतों को आचार्यों ने देश चारित्र वा सकल चारित्र कहा है। जो क्रमशः गृहस्थ और मुनियों के होते हैं, और जिनका कारण अप्रत्याख्यानावरण कषाय और प्रत्याख्यानावरण कषाय का अनुदय होना है। ऐसे परम पूज्य चारित्र को बंध का कारण कैसे कहा जा सकता है।

ऊपर मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रमाण हमने लिया है। उससे भी इस प्रकार समझना चाहिए कि पंचम गुणस्थानवर्ती के जो देश चारित्र रूप परिणाम हुआ है, उससे तो संवर व निर्जरा है और उसी गृहस्थ के जो प्रत्याख्यानावरण आदि कषायों का उदय है, उनके कारण बंध भी है। इसी तरह महाव्रतों को जानना। इसी से सिद्ध होता है कि देशव्रती व महाव्रती को आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा ये चारों होते हैं, ऐसा समझना चाहिए। यदि संक्षेप में कहा जाये तो इस प्रकार कह सकते हैं कि 'महाव्रत से बंध नहीं होता परन्तु महाव्रती को बंध होता है।'

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,  
आगरा-282002 (उ.प्र.)

## इतिहास के नाम पर आस्था से खिलवाड़ नहीं किया जा सकता

भोपाल 5 दिसम्बर। राष्ट्रीय 'अनेकान्त' अकादमी ने एक प्रस्ताव पारित कर ऐसे लोगों की भर्त्सना की है जो इतिहास के नाम पर अपनी सीमित और एकपक्षीय दृष्टि से हजारों हजार वर्ष प्राचीन पुराणों, शास्त्रों और पुरातत्त्व की अनदेखी कर राजनैतिक स्वार्थ पूरे करना चाहते हैं।

अकादमी के अध्यक्ष, साहित्यकार कैलाश मड़वैया ने कहा कि इतिहास में जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी के अतिरिक्त पार्श्वनाथ और नेमिनाथ के अनेक उल्लेख उपलब्ध हैं। यदि किसी इतिहासकार की दृष्टि सीमित है तो इससे पुरातन प्रमाणों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। आदिकाल से चले आ रहे जैन धर्मावलम्बियों की आस्था में तो किंचित् भी खिलवाड़ नहीं होना चाहिए। वेदों में 'केशी' नाम से तीर्थंकर ऋषभ देव का उल्लेख मिलता है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त ऋषभदेव की प्रतिमा इसका स्पष्ट प्रमाण है। उड़ीसा में स्थित खारवेल के शिलालेख में महावीर स्वामी द्वारा स्वयं ऋषभनाथ की एतिहासिकता को मान्य किया गया है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में जैन धर्मावलम्बियों को इससे देश का मूल नागरिक कहा है। भारत के उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैले हजारों-हजार पुरातन जैन तीर्थों पर स्थित प्राचीन शिलालेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि महावीर स्वामी के पूर्व भी तेईस तीर्थंकर हुए हैं।

अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए विद्वानों ने कथित इतिहास की आलोचना करते हुए महावीर के पूर्व तेईस तीर्थंकरों को महज कल्पना कहना पुरातत्त्व और वास्तविक इतिहास से आँखे मूँद लेना निरूपित किया।

इस अवसर पर विद्वानों द्वारा केन्द्रीय शिक्षामंत्री और कांग्रेस सहित अन्य राजनीतिज्ञों की भी प्रशंसा की गई, जिन्होंने गलत इतिहास को पढ़ाया जाना बंदकर इसे संशोधित करना स्वीकार किया है।

कैलाश मड़वैया

## हरिवंशपुराण-परिशीलन राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न

कोटा (राज.) यहाँ परम पूज्य मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज एवं पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य एवं प्राचार्य श्री अरुणकुमार जैन (ब्यावर) एवं पार्श्वज्योति के प्रधान सम्पादक डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' (बुरहानपुर) के संयोजकत्व में श्री दिगम्बर जैन प्रभावना समिति, श्री दि. जैन नासियां दादावाड़ी, कोटा द्वारा आयोजित 'आचार्य जिसने कृत हरिवंशपुराण परिशीलन' पर अष्टम राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी दि. 1 से 3 नव. तक 33 विद्वानों की सहभागिता एवं सैकड़ों नर-नारियों की उपस्थिति में 8 सत्रों में सम्पन्न हुई।

# कार-कथा

शिखरचन्द्र जैन

जुलाई का महीना विभिन्न लोगों को विभिन्न कारणों से प्रिय होता है। ज्यादातर लोगों को जहाँ जून के महीने में गर्म तवे पर बूँद की माफिक बरसे पानी के कारण उत्पन्न उमस भरी गर्मी से राहत दिलाती जुलाई की अनवरत वर्षा सुखदायी प्रतीत होती है, वहीं कुछ लोग सूखे के समय रोजी-रोटी की तलाश में परदेश की ओर पलायन कर गए

अपने प्रियजनों की, इस माह, कमाई के साथ वापसी की उम्मीद से प्रसन्न होते पाए जाते हैं। मई के महीने में खत्म हो चुके सूखा राहत कार्यों से निराश कई लोग, जहाँ जुलाई में होती भरपूर बरसात से बाढ़राहत कार्यों के शर्तियाँ शुरु होने की आशा में पुलकित दिखाई देते हैं, वहीं कतिपय महिलाएँ जुलाई में सावन के संयोग से आने वाले रक्षा बंधन पर्व पर मैके जाकर वहाँ पड़ चुके झूलों का आनंद उठा सकने की कल्पना से गदगद नजर आती हैं। इसके अलावा अन्य कई फुटकर कारणों से भी लोग जुलाई माह को प्रेम करते पाए जाते हैं। मसलन, मेरे पड़ौसी, उस वर्ष जुलाई की प्रतीक्षा अत्यंत उत्सुकता के साथ कर रहे थे। कारण कि उस वर्ष पड़ौसी की पदोन्नति निश्चित थी, जो कि कम्पनी की नियमानुसार जुलाई माह में होना तय थी। इस पदोन्नति से मेरे पड़ौसी न केवल कर्मचारी से अफसर में तब्दील हो जाने वाले थे, बल्कि कार रखने पर कम्पनी से वाहन-भत्ता पाने की पात्रता भी प्राप्त करने वाले थे। जाहिर है कि जो परिवर्तन होने जा रहा था उसकी लालसा हर नौकरी पेशा के मन में स्वाभाविक रूप से हुआ करती है। अफसरी ठसक और चार पहियों वाले वाहन के होने का सुख भला कौन नहीं चाहेगा?

वे लोग जो नौकरी में होते हैं, मूलतः दो श्रेणियों में विभक्त पाए जाते हैं। पहली श्रेणी में कर्मचारी होते हैं और दूसरी में

वे लोग जो नौकरी में होते हैं, मूलतः दो श्रेणियों में विभक्त पाये जाते हैं। पहली श्रेणी में कर्मचारी होते हैं और दूसरी में अफसर। कर्मचारी उन्हें कहते हैं, जो बहुसंख्यक होते हैं, जिन्हें हड़ताल करने का वैधानिक अधिकार मिला होता है और जो अफसरों को, प्रबन्धन को तथा सरकार को सार्वजनिक रूप से गरयाने की स्वतंत्रता हासिल किये होते हैं। इसके विपरीत अफसर उन्हें कहते हैं, जो अल्पसंख्यक होते हैं, जिन्हें अपने मातहतों के कारनामों के लिए उत्तरदायी माना जाता है और जो एक ओर से जनता तथा कर्मचारियों द्वारा सामूहिक रूप से गरयाये जाने वा दूसरी तरफ से प्रबन्धन एवं सरकार द्वारा धमकाए जाने के काम आते हैं।

अफसर। कर्मचारी उन्हें कहते हैं जो बहुसंख्यक होते हैं, जिन्हें हड़ताल करने का वैधानिक अधिकार मिला हुआ होता है और जो अफसरों को, प्रबन्धन को तथा सरकार को सार्वजनिक रूप से गरयाने की स्वतंत्रता हासिल किए हुए होते हैं। इसके विपरीत अफसर उन्हें कहते हैं जो अल्प संख्यक होते हैं, जिन्हें अपने मातहतों के कारनामों के लिए उत्तरदायी माना जाता है और जो एक ओर से जनता तथा कर्मचारियों द्वारा सामूहिक रूप से गरयाये जाने या दूसरी तरफ से प्रबन्धन एवं सरकार द्वारा धमकाए जाने के काम आते हैं। इस विवेचना से यह सिद्ध होता है कि अफसरी करना सहज कार्य नहीं है। निश्चित ही यह एक जीवट का कार्य है, जो केवल वही कर पाते हैं, जिन्हें 'आ बैल मुझे मार' को चरितार्थ करने में विश्वास होता है।

हर्ष का विषय है कि हमारे देश में सिर्फ साहसी व्यक्ति ही बसते हैं। अतः हर व्यक्ति जीवट का कार्य करने पर उतारू रहता है। संभवतः इसीलिए, सारी विषमताओं के बावजूद हर आदमी अफसर बनने को लालायित पाया जाता है, बहुत कुछ उन महिलाओं की तरह जो गर्भधारण एवं प्रसव की पीड़ादायक प्रक्रिया तथा रिस्क के बावजूद माँ बनने के लिये लालायित रहती हैं या फिर उन संसारी प्राणियों की तरह जो केवल एक बूँद शहद के स्वाद के लिए संसार के भीषण

कष्टों को भोगने के लिए तत्पर नजर आते हैं। अफसर बनने की ललक को व्यक्त करने हेतु कहा भी है - 'सौ से नब्बे कर दे पर नाम दरोगा धर दे।' अर्थात् तनखाह भले सौ रुपये से नब्बे कर दी जाय पर पदनाम 'दरोगा' रख दिया जाए, चाहे वह पुलिस का दरोगा हो, सफाई का दरोगा या फिर नमक का दरोगा।

अफसरी और चार

पहियों वाले वाहन का साथ, प्राचीन काल से ही, चोली-दामन का रहा है। जब ये वाहन नहीं होते थे तब चौपाया घोड़ा इस कमी को पूरा करता था। इस समय एक अफसर का कुशल घुड़सवार होना अनिवार्य था। कहते हैं कि बुनियादी सेवा नियमों में आज भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि तहसीलदार बनने के लिये घुड़सवारी का प्रेक्टिकल-टेस्ट पास करना जरूरी होगा। उन दिनों अफसर उसे ही माना जाता था जिसके घर में घुड़साल हो और जिसमें कम से कम एक घोड़ा बँधा हो। कालान्तर में जीप और कार के आविर्भाव से अफसरों की पहचान और भी सहज हो गई। जिसके घर जीप खड़ी हो, वह अफसर। जिसके घर कार खड़ी हो वह और भी बड़ा अफसर। सरकारी उद्योगों में कम्पनी की ओर से गाड़ी देने के बजाय अफसरों को निजी गाड़ी रखने हेतु भत्ता देने की प्रथा प्रारंभ कर दी गयी और इस तरह इन उद्योगों में भी अफसरों की पहचान बनाए रखी गई।

आसन्न पदोन्नति से प्रफुल्लित पड़ौसी ने जब कार खरीदने हेतु पड़ताल प्रारंभ की, तो दूसरे ही दिन दूधवाले से लेकर आटो-डीलर तक पड़ौसी के पीछे पड़ गए।

'कैसी कार लेना चाहते हैं साब?' दूध वाले ने पूछा - 'कहें तो अभी खड़ी करवा दूँ दो-चार कारें घर के सामने। चुन लीजिएगा।'

'मुझे कार खरीदना है, गाय नहीं।'

पड़ौसी ने कहा!

‘अब ऐसा ज्यादा कुछ फरक भी नहीं है दोनों में।’ दूध वाला बोला- ‘गाय दूध के वास्ते खरीदते हैं तो कार अलाऊंस के वास्ते। बल्कि अलाऊंस की खातिर तो कार का चलती हालत में होना भी दरकार नहीं है।’

पड़ौसी ने इस कथन को मस्तिष्क के एक कोने में रख लिया। बोले कुछ नहीं। आटो-डीलर भी उनसे तत्काल मिला और उन सारी स्कीमों का विस्तृत विवरण दिया, जिनके अंतर्गत न्यूनतम ब्याज और अधिकतम किश्तों में नई कार मुहैया कराई जा सकती थी। इनके अलावा अन्य कई लोगों ने अपनी पुरानी कार बेचने के उद्देश्य से पड़ौसी से सम्पर्क साधा। इस तरह, कुछ ही समय में चारों ओर से धिर जाने पर पड़ौसी पूर्णतः विवृत पाए गए। उन्हें लगा मानों लोग कार के लिए ग्राहक नहीं, बल्कि बिटिया के लिए वर तलाश रहे हों।

और इसी दौरान पड़ौसी का प्रमोशन आर्डर आ गया। वह अफसर बन गए, साथ ही वाहन भत्ते के पात्र भी।

मैं बधाई देने पहुँचा तो उन्हें उतना प्रसन्न नहीं पाया, जितनी की अपेक्षा थी।

‘क्या बात है पड़ौसी?’ मैंने मुस्कराते हुए पूछा - ‘मिठाई में शक्कर कुछ कम नजर आ रही है।’

पड़ौसी गंभीर हो गए। मैंने भी मुस्कराहट समेट ली।

‘अब आपसे क्या छिपाना जैन साब,’ पड़ौसी ने किंचित् विचलित होते हुए कहा- ‘मैं कार खरीदने को लेकर बड़ी द्विविधा में हूँ। नयी लूँ या पुरानी? चलनेवाली लूँ या गैर-चलनेवाली। लूँ भी अथवा न लूँ? कुछ समझ नहीं आ रहा। आप ही सलाह दें कि मैं क्या करूँ?’

अब गंभीर होने की बारी मेरी थी। महापुरुषों ने पड़ौसी से प्रेम करने की हिदायत तो दी है, लेकिन सलाह के संदर्भ में वे मौन रहे हैं। व्यक्तिगतरूप से मैं सलाह देने को बड़ा रिस्की मानता हूँ। गलत पड़ जाये तो अगले से जिदगी भर को ठन जाती है। इसलिए तनिक दार्शनिकता ओढ़ते हुए मैंने कहा - ‘परिग्रह तो पड़ौसी हर हाल में दुख का कारण माना गया है। जिस वस्तु में हम सुख की आशा करते हैं, वस्तुतः उसमें सुख होता नहीं है। सुख का छलावा मात्रा होता है।

अतः सर्वोत्तम तो यही होगा कि परिग्रह से परे रहा जाए।’

‘सो तो आप ठीक कहते हैं।’ पड़ौसी ने कहा - ‘पर मैं जो हूँ सो अभी भी गृहस्थाश्रम में हूँ। साथ में एक अदद पत्नी वा तीन बच्चे हैं, जिनकी बहुत सारी हसरतें बहुत दिनों से मेरी पदोन्नति से हिलगी हुई हैं। बेटियों ने सहेलियों से अपने पापा की कार में पिकनिक ले जाने का वादा कर रखा है। बटे की योजना अपनी कार को ड्राइव करते हुए, दिन में कई बार अपने दोस्तों के घर के सामने से सरपट निकल जाने की बनी हुई है। पत्नी की चिरपोषित अभिलाषा है कि वह अपनी कार में बैठ कर दूर अपने गाँव जाये, जहाँ गाँव वाले उसे देखकर चकित रह जायें। कहें कि देखो फलों की बिटिया का भाग्य! जिसे नाक पौछने का शऊर नहीं था, आज अपनी कार में फरॉटे भर रही है।’

‘तब तो पड़ौसी आपको नई कार खरीदना चाहिए।’ मैंने इस सलाह को निरापद मानते हुए कहा - ‘अगर गाँव-खेड़े तक जाना है, तो फिर कार के चलने की गारंटी होना चाहिए वरना फर्ज करो कि गाँव में जाते ही पुरानी कार बिगड़ जाये और उसे बैलों से खिंचवा कर शहर की गैरेज तक लाना पड़े तो फिर कितनी भद्द उड़ेगी?’

‘सो तो सही है मान्यवर, पर नई कार खरीदने की हैसियत भी तो बन पड़ना चाहिए न? आप तो जैन साब, जानते ही हैं कि बड़की राजधानी के एक होस्टल में रहकर कालेज में पढ़ रही है। छुटकी पी.एम.टी.की तैयारी में तमाम ट्यूशनो में जा रही है और बेटा इंजीनियर बनने की कोशिश में अभी से कोचिंग ले रहा है। ऐसे में घर में कभी नमक कम पड़ जाता है, तो कभी तेल। और फिर नई कार के लोन की किश्त! बाप रे! जितना अलाऊंस मिलेगा उससे दुगने से भी ज्यादा। अब यह भी तो अच्छा नहीं लगेगा कि फटे कपड़े पहिन कर नई कार चलाई जावे।’

‘तब तो पड़ौसी आपको कार कतई नहीं खरीदना चाहिए,’ मैंने कहा - ‘घर के सदस्यों को कुछ समय के लिए कार का मोह त्याग देना उचित होगा। लोभ का संवरण करना श्रेयस्कर होगा। वैसे भी गुरुजनों ने लोभ को पाप का जनक निरूपित किया है। कषायों को वश में करने का उपदेश दिया है। तो क्या आप परिजनों को इतना भी नहीं समझा

पायेंगे?’

‘इन्हें तो मैं समझा लूँगा।’ पड़ौसी ने कहा- ‘लेकिन उन्हें कैसे समझाऊँगा जिनके बीच मैं काम करता हूँ, जिनके मध्य मैं उठता बैठता हूँ, जिनके लिये समाज में आपकी स्थिति के आकलन के लिए आपके सदगुणों से ज्यादा ऊपरी तामझाम महत्त्वपूर्ण होता है। अफसरी करना है तो मातहतों के लिए अफसर का रूप धारण करना भी तो जरूरी होता है। होता है न आदरणीय?’

मैंने आदरणीय बने रहने हेतु वार्तालाप को यहीं विराम देना उपयुक्त समझा। इसके बाद जो हुआ वह लगभग तय था। पड़ौसी ने कार खरीदी। यही कोई दस-बारह वर्ष पुरानी। घर तक खुद चला कर लाए। पुत्र ने भी कार पर हाथ साफ किया। एक दो बार सरपट दौड़ायी भी। बेटियाँ भी नजदीक के फिकनिक-स्पॉट तक हो आईं। पर होता यों था कि कभी कार का एक पुर्जा टूटता, तो कभी दूसरा। गैरेज में कार रिपेयर कराते-कराते पड़ौसी को इतना ज्ञान हो गया कि वह खुद कार ठीक करने लगे। मैं बहुधा उन्हें बोनेट खोले कार के अंदर झाँकते पाता। अथवा कार के नीचे घुस कर कुछ टाइट करते देखता। पड़ौसी ड्यूटी से लौटते और कार में भिड़ जाते। पहले पेंट-कमीज पहन कर रिपेयर करते थे। बाद में लुंगी-बनियान में आ गए। उन्हें बुरा न लगे इसलिये मैं कार की चर्चा उनसे कभी नहीं करता। केवल कनखियों से उनके चेहरे पर बढ़ती पीड़ा और बनियान में बढ़ते छिद्रों को निहारता रहता। रिपेयर के बाद जब व कार की ट्रायल लेने निकलते तो फटी बनियान पहने हुए होते, जैसे सब कुछ पूर्व आभासित था।

कहते हैं कि प्राचीन काल में जब किसी से बदला लेना होता था, तो उसे हाथी उपहार में दे दिया जाता था अथवा जब किसी की मति मारी जाती थी तो वह घर के सामने हाथी बंधवा लेता था। इससे समाज में उसकी प्रतिष्ठा तो अवश्य बढ़ जाती थी, पर घर खोखला होने लगता था। लगा कि जैसे पड़ौसी कुछ वैसी ही स्थिति में पड़ गए हों।

7/56-ए, मोतीलाल नेहरू नगर  
(पश्चिम) भिलाई (दुर्ग) छत्तीसगढ़,  
पिन-490020

# स्तुति

कविवर दौलतरामजं

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।  
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस-विहीन॥1॥

शब्दार्थ : सकल - सम्पूर्ण, ज्ञेय-जानने योग्य पदार्थ, ज्ञायक - जानने वाले, निजानन्द - अपनी आत्मा के आनन्द में, तदपि - फिर भी, नित - हमेशा, अरि - शत्रु (मोहकर्म), रज- धूल (ज्ञानावरण, दर्शनावरण), रहस- अंतराय (छिपाना), विहीन- रहित।

अर्थ : सम्पूर्ण पदार्थों के जानने वाले होने पर भी जो अपनी आत्मा के आनन्द रूपी रस में लीन रहते हैं तथा जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों से रहित हैं वे जिनेन्द्र भगवान् हमेशा जयवंत हों।

जय वीतराग विज्ञान-पूर, जय मोह-तिमिर को हरन सूर।  
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरज-मण्डित अपार॥2॥

शब्दार्थ : पूर - पूर्ण, तिमिर - अन्धकार, हरन - नष्ट करने के लिये, सूर - सूर्य, दृग - दर्शन, वीरज - वीर्य, मण्डित - सुशोभित, अपार - अनंत।

अर्थ : जो रागद्वेष से रहित हैं, विशिष्ट ज्ञान से पूर्ण हैं, मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान हैं, जो अनन्तानन्त ज्ञान को धारण किये हैं और अनंतदर्शन, अनंतसुख व अनंतवीर्य से सुशोभित हैं। उन प्रभु की जय हो।

जय परम शांत मुद्रा समेत, भवि-जनको निज अनुभूति हेत।  
भवि-भागनवच जोगे वशाय तुम धुनि हवै सुनि विभ्रम नशाय॥3॥

शब्दार्थ : परम - अत्यन्त, समेत - सहित, भवि - भव्य, जनको - जीवों को, अनुभूति - ज्ञान, हेत - कारण, भागन - भाग्य से, वचजोगे - वचन योग के, वशाय - निमित्त से, धुनि - दिव्य ध्वनि, हवै - होती है, विभ्रम - मोह या मिथ्यात्व।

अर्थ : जो अत्यन्त शांत मुद्रा से सहित हैं, उनकी जय हो। भव्य जीवों को अपनी आत्मा का ज्ञान कराने में कारण हैं। भव्य जीवों के भाग्य से और वचन योग के निमित्त से जिनकी दिव्य ध्वनि होती है। जिसको सुनकर जीवों का मोह (मिथ्यात्व) नष्ट हो जाता है।

तुम गुण चिंतत निज-पर-विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।

तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥4॥

शब्दार्थ : विवेक - ज्ञान, प्रगटै - उत्पन्न होता है, विघटै - नष्ट होती है, आपद - आपत्तियाँ, भूषण - आभूषण, दूषण - दोष, वियुक्त - रहित, विकल्प - रागादिक परिणाम, मुक्त - रहित।

अर्थ : आपके गुणों का चिन्तन करने से स्व-पर का ज्ञान प्रकट होता है और अनेक प्रकार की आपत्तियाँ नष्ट होती हैं। आप संसार के आभूषण स्वरूप हैं, दोषों से रहित हैं और सभी प्रकार की महिमा से युक्त, रागादिक परिणामों से रहित हैं।

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।

शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन॥5॥

शब्दार्थ : अविरुद्ध - विरोध से रहित, अनूप - अनुपम, कीन - करने वाले, अछीन - क्षय से रहित।

अर्थ : हे भगवान्! आप विरोध से रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, अत्यन्त पावन परमात्म रूप हैं, अनुपम हैं, शुभ-अशुभ विभावों का अभाव करने वाले हैं, स्वाभाविक परिणति से सहित हैं और क्षय से रहित हैं।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्व चतुष्टयमय राजत गंभीर।  
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत॥6॥

शब्दार्थ : अष्टादश - अठारह, विमुक्त - रहित, धीर - अटल, राजत - सुशोभित, रमा - लक्ष्मी, धरन्त - धारण करते हैं।

अर्थ : हे भगवान्! आप अठारह दोषों से रहित हैं, अटल हैं, अपने स्वचतुष्टय से सुशोभित हैं, समुद्र के समान गम्भीर हैं। मुनि और गणधर आदि भी आपकी सेवा करते हैं, आप केवलज्ञान आदि नव क्षायिक लब्धिरूपी लक्ष्मी को धारण किये हुये हैं।

अठारह दोष : क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, जन्म, मरण, भय, स्मय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, खेद, रोग, स्वेद और शोक।

नव क्षायिक लब्धि - क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउप-भोग, क्षायिकवीर्य, और क्षायिकचारित्र।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।  
भव-सागर में दुख छार वारि, तारनको अवर न आप टारि॥7॥

शब्दार्थ : सेय - सेवा करके, अमेय - अनन्त, शिव - मोक्ष, जाहिं - जा रहे हैं, जैहैं - जावेंगे, सदीव - हमेशा, छार - खारा, वारि - पानी, अवर - दूसरा, टारि - छोड़कर।

अर्थ : हे भगवान्! आपके मोक्षमार्ग रूपी शासन की सेवा करके अनन्तों जीव मोक्ष को प्राप्त हुये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और हमेशा जावेंगे। संसार रूपी समुद्र में खारे पानी के समान दुख से निकालने के लिये आपको छोड़कर कोई दूसरा नहीं है, अर्थात् आप ही भवसागर से पार उतार सकते हैं।

यह लखि निज दुख-गद-हरण-काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।  
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥8॥

शब्दार्थ : लखि - देखकर, गद - रोग, हरणकाज - नष्ट करने के लिये, जाने - जाना, तातैं - इसलिये, उचरों - कहता हूँ, चिर - अनादिकाल से, लहाय - प्राप्त किये हैं।

अर्थ : इस प्रकार देखकर, कि अपने दुःख रूपी रोग को नष्ट करने के लिये आपका निमित्त ही इलाज स्वरूप है। अतः ऐसा जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ एवं जो मैंने अनादिकाल से दुःख प्राप्त किये हैं, उनको कहता हूँ।

अर्थकर्ता - ब्र. महेश

श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर।

# धर्म का झण्डा भी डण्डा बन जाता है

आचार्य श्री विद्यासागर

दया का कथन निरा है  
और  
दया का वतन निरा है  
एक में जीवन है  
एक में जीवन का अभिनय।

अब तो....

अस्त्रों शस्त्रों वस्त्रों  
और कृपाणों पर भी  
'दया धर्म का मूल है'  
लिखा मिलता है।

किन्तु,

कृपाण कृपालु नहीं है  
वे स्वयं कहते हैं

हम हैं कृपाण

हम में कृपा न!

कहाँ तक कहें अब!

धर्म का झण्डा भी

डण्डा बन जाता है

शास्त्र शस्त्र बन जाता है

अवसर पाकर

और

प्रभु स्तुति में तत्पर

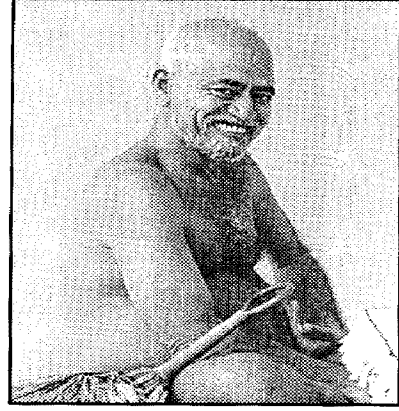
सुरीली बाँसुरी भी

बाँस बन पीट सकती है

प्रभु-पथ पर चलने वालों को।

समय की बलिहारी है!

'मूकमाटी' महाकाव्य से साभार



नमोऽस्तु

## मुखौटे

प्रो. (डॉ.) सरोज कुमार

लाभ-शुभ के गणित में

चिपकाए रहा मुखौटे।

आती रही चमड़ी

धीरे-धीरे उन पर

जिस्म में उतर गए मुखौटे!

अब मुक्त होने की कोशिश में

खिचती है चमड़ी

रिसता है लहू!

धोता हूँ शरीर

चमचमाते हैं मुखौटे!

मुखौटों में भर गई जिन्दगी

जिन्दगी में भर गए मुखौटे

अब न चेहरे खरे

न मुखौटे खोटे!

'मनोरम' 37, पत्रकार कालोनी,  
इंदौर-45001, म.प्र.

# प्राकृतिक चिकित्सालय

करीला, खुर्ई रोड, सागर- 470002 (म.प्र.), फोन- 07582-24671, 21271  
प्रकृति, समय और धैर्य ये तीन बड़े डॉक्टर हैं, जो नीरोग करते हैं।

**लक्ष्य :** यह पवित्र प्राचीन योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा समस्त पीड़ित मानवता के शारीरिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य सुख तथा शांति प्राप्ति को समर्पित विश्व का एक अद्वितीय केन्द्र है। इस केन्द्र में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये 12 बहिनों एवं भाई द्वारा शुद्ध छने जल से उपचार एवं मर्यादित समय सीमा में तैयार किया गया आहार देकर तन मन तथा चेतना के रुपान्तरण द्वारा जीवन में बदलाव लाया जाता है।

**संकल्प :** शाकाहार एवं स्वास्थ्य चेतना का जागरण घर-घर हो। सभी स्वस्थ एवं सुखी हों। तन के माध्यम से धर्म की साधना सभी कर सकें। आधि, व्याधि और उपाधि से दूर हो सकें। यहाँ पंच तत्वों से बने शरीर में आई विकृति (रोग) को पुनः प्रकृति की ओर लौटा कर मिट्टी, पानी, धूप, हवा, सूक्ष्म व्यायाम, ध्यान, वैज्ञानिक-मालिश, आहार, उपवास, रसाहार, फलाहार एवं ईश्वर प्रार्थना आदि साधनों से जटिल एवं कठिन पुराने रोगों से पीड़ित, जीवन से निराश, दवाइयाँ खा-खाकर ऊबे हुए रोगियों का सफलता से उपचार किया जाता है।

**रोगों का उपाचार :** जो कब्ज, मोटापा, ब्लड प्रेशर, दिल के रोग, दमा, गठिया, जोड़ों तथा रीढ़ के दर्द, अर्थराइटिस, बवासीर, गैस की बीमारी, कोलाइटिस, मधुमेह, अल्सर, सिर दर्द, माईग्रेन, अनिद्रा, सर्दी-जुकाम, एलर्जी, महिलाओं की माहवारी संबंधी तथा अन्य पुरानी बीमारी से ग्रस्त हैं, दवाइयाँ खाते-खाते तंग आ चुके हैं, समझ बैठे हैं कि रोग दम लेकर ही जायेगा तो निराश न हों, शीघ्र हमसे संपर्क करें।

**चिकित्सीय सेवा :** संस्था में प्राकृतिक चिकित्सा एवं शाकाहार व अहिंसा के लिये समर्पित शिक्षा प्राप्त अनुभवी, कुशल एवं अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ व्रती बहिनें एवं भाई डॉक्टरों एवं उपचारकों की पृथक्-पृथक् सेवाभावी टीम कार्यरत हैं। आधुनिकतम साधनों से सुसज्जित पुरुष एवं महिला उपचार विभाग की व्यवस्था अलग-अलग की गई है।

## आवास एवं शुल्क व्यवस्था

परामर्श शुल्क	50 रुपये (एक वर्ष के लिये)
प्रवेशित शुल्क प्रतिदिन का	100 रुपये
अप्रवेशित शुल्क एक समय का आहार के साथ	60 रुपये
दोनों समय का उपचार जिसमें आहार शामिल नहीं है	70 रुपये
स्टीम बाथ मालिश के साथ	70 रुपये

मालिश	30 रुपये
फुलटब बाथ मालिश के साथ	60 रुपये
सूर्य स्नान	60 रुपये
फुल टब बाथ	30 रुपये
एनिमा (कैथेटर शुल्क शामिल)	15 रुपये
गर्म पाद स्नान	30 रुपये
कटि स्नान	30 रुपये
योग + ध्यान + षट्कर्म एवं व्यायाम (एक माह का)	250 रुपये
जनरल वार्ड + उपाचार + आहार का शुल्क	100.00 रुपये प्रतिदिन होगा। कमरा अलग से लेने पर 40/- रुपये प्रतिदिन शुल्क होगा। मरीज के साथ सहयोगी रहने पर सहयोगी का भोजन (100 रुपये प्रति व्यक्ति) एवं रहने का 25/- रुपये दिन का चार्ज अलग लगेगा। यह शुल्क परिवर्तनीय है।

**विशेष आकर्षण :** प्राकृतिक चिकित्सा से अतिशीघ्र लक्षणों का निवारण होता है। इसकी वैज्ञानिक परख के लिये पैथोलॉजी लैब की व्यवस्था है। जहाँ पर खून, पेशाब, ई.सी.जी., एक्स-रे, सोनोग्राफी की सुविधा है। साथ ही भव्य मंदिर है। जहाँ आप देवदर्शन, पूजा आदि कर सकते हैं।

1. उपचार साधन एवं सुविधा : जल चिकित्सा (हाइड्रोथेरेपी), कटिस्नान, रीढ़ स्नान, फुल टब स्नान, गीली सूती लपेट, पट्टियाँ, पूरी चादर लपेट, गर्म पाद स्नान, मेहल-उपचार।
2. भाप स्नान : स्टीम बाथ, सोना बाथ व्यवस्था।
3. सूर्य किरण : (क्रोमोथेरेपी) चिकित्सा, धूप स्नान।
4. मिट्टी स्नान : मिट्टी की पट्टियाँ, मिट्टी लेप, सर्वांग मिट्टी, गर्म पुल्टिस, टब बाथ।
5. मालिश : सर्वांग मालिश, जोड़ों, स्नायु, मांसपेशियों की मसाज-क्रियाएँ, मसल स्टीमुलेटर, ब्राइब्रेटर प्रयोग।
6. यांत्रिक व्यायाम : वाकर, साइकिलिंग, पेविंग टिविस्टर, एक्सरसाइजर, पुलर ट्रेकशन, फिजियो थेरेपी व्यायाम।
7. एक्युप्रेसर एवं रिफ्लेक्सोथेरेपी।
8. प्राकृतिक रूप से संतुलित, नियंत्रित, शोधक एवं पक्के काढ़े, रस, सूप एवं रसाहार।